* श्रीहरिः *

श्रीकृष्णका आह्वान



लेखक—

श्रीराजेन्द्रबिहारीलाल, एम्० एस्-सी०

मुद्रक तथा प्रकाशक— मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

[भारत-सरकारद्वारा उपलब्ध कराये गये रियायती
मूल्यके कागजपर मुद्रित]

सं० २०३८ प्रथम संस्करण २०,०००

मूल्य ८० पैसे

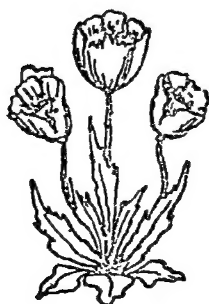
पता—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

भूमिका

आजकल हमारे देशकी सबसे बड़ी आवश्यकता लोगोंको संयम, सदाचार, कर्तव्यनिष्ठा, सब प्राणियोंसे प्रेम, देशभक्ति और परोपकार सिखानेकी है। ये ही सब धर्मोंके महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं, किन्तु वर्षोंसे हम इनकी अवहेलना करते आ रहे हैं। इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिये 'श्रीकृष्णका आह्वान' नामक पुस्तक प्रकाशित की जा रही है। इसमें प्रतिपादित विचार साम्प्रदायिकता और कट्टरतासे पूर्णतया बरी हैं। इसके प्रत्येक प्रसङ्गोंपर प्रतिष्ठित संतों-विद्वानोंका पूर्ण समर्थन प्राप्त है, अतः यह पुस्तक शास्त्रानुकूल तर्क-संगत, प्रामाणिक और सबके लिये हितकर है।

आशा है, हमारे पाठक इसके अध्ययन-मनन एवं चिन्तन द्वारा वास्तविक सुख-शान्तिकी उपलब्धि करेंगे।

—प्रकाशक



अनुक्रमणिका



पूजाधर्म और सेवाधर्म

श्रीकृष्णके प्रिय मित्र अर्जुन एक उलझनमें फँसे हुए थे। सांसारिक कर्तव्यका पालन करते हुए युद्धमें तत्पर होकर अपने सगे-सम्बन्धियोंकी हत्या की जाये अथवा युद्धका परित्याग करके साधु-संन्यासीका जीवन अपनाया जाये। वस्तुतः यह समस्या हमारे धर्मके सामने आदिकालसे चली आ रही है। गीताका मुख्य विषय इस समस्याको सुलझाना है। अन्ततः श्रीकृष्णके उपदेशसे प्रभावित होकर अर्जुनने संन्यासकी अपेक्षा युद्धरत होनेके कर्तव्यको श्रेयस्कर समझा।

गीताने सांख्ययोग और कर्मयोग दो अलग-अलग मार्गोंको मान्यता दी है।

"इस लोकमें दो प्रकारकी निष्ठा मेरे द्वारा पहले कही गयी है, ज्ञानियोंकी ज्ञानयोगसे और योगियोंकी निष्काम कर्मयोगसे।
(३–३)

अनुक्रमणिका



पूजाधर्म और सेवाधर्म

श्रीकृष्णके प्रिय मित्र अर्जुन एक उलझनमें फँसे हुए थे। सांसारिक कर्तव्यका पालन करते हुए युद्धमें तत्पर होकर अपने सगे-सम्बन्धियोंकी हत्या की जाये अथवा युद्धका परित्याग करके साधु-संन्यासीका जीवन अपनाया जाये। वस्तुतः यह समस्या हमारे धर्मके सामने आदिकालसे चली आ रही है। गीताका मुख्य विषय इस समस्याको सुलझाना है। अन्ततः श्रीकृष्णके उपदेशसे प्रभावित होकर अर्जुनने संन्यासकी अपेक्षा युद्धरत होनेके कर्तव्यको श्रेयस्कर समझा।

गीताने साङ्ख्ययोग और कर्मयोग दो अलग-अलग मार्गोंको मान्यता दी है।

"इस लोकमें दो प्रकारकी निष्ठा मेरे द्वारा पहले कही गयी है, ज्ञानियोंकी ज्ञानयोगसे और योगियोंकी निष्काम कर्मयोगसे।

(३-३)

सांख्य-मार्गमें लौकिक कर्मोंका लगभग पूरा परित्याग करके धार्मिक कृत्योंमें तल्लीन रहना पड़ता है। कर्म-मार्गमें लौकिक कर्तव्योंके साथ-साथ धार्मिक कृत्योंको भी स्थान दिया जाता है। इन मार्गोंको पूजाधर्म और सेवा धर्म भी कहा जा सकता है।

जीवन-रक्षा आवश्यक है

यह मानी हुई बात है कि केवल जीवित व्यक्ति ही बढ सकता है और अपना विकास कर सकता है—देहरहित आत्मा या आत्मा-रहित देह नहीं। इसलिये देह और आत्माको साथ-साथ बनाये रखना प्रत्येक व्यक्तिका परम कर्तव्य हो जाता है। इस प्रसंगमें दूसरा तथ्य यह है कि जीवितावस्थामें हर व्यक्ति सामूहिक जीवन-पर आश्रित रहता है। प्रत्येक व्यक्तिको अपने-अपने परिवेशसे, मूक पशुओसे और अपने सहवर्ती मनुष्योसे अनेक वस्तुओंकी आवश्यकता पड़ती है। अतएव परिवेश और समाजकी ठीक दशामें बनाये रखनेवाले कार्य हमारा दूसरा महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व हैं। धार्मिक कृत्य महत्त्वपूर्ण होते हुए भी बादमे आते है। यह भगवान्-का विधान है और इसमे खलल डालनेके परिणाम विनाशकारी ही होंगे।

अत्यधिक सम्पत्ति और निर्धनता दोनोंसे बुराइयाँ उत्पन्न होती हैं। जीवनकी मूलभूत आवश्यकताओं—भोजन, कपड़ा, मकान और शिक्षाके अभावमें दुराचार, अनैतिकता और जुर्मोंकी उत्पत्ति होती है। जिस समुदायके बहुत-से सदस्य आलसी, कामचोर

या परान्नभोजी हो वह समाज न तो सुखी रह सकता है और न उन्नति ही कर सकता है। समाजके प्रत्येक सदस्यके परिश्रम और योगदानसे ही सब लोग समुचितरूपसे जीवन व्यतीत कर सकेंगे तथा सदाचार और धार्मिकताको बढ़ावा मिल सकेगा।

आध्यात्मिकताके लिये ठोस भौतिक आधार तभी बन सकेगा जब नागरिकोंको आवश्यक सुख-सुविधाएँ मिलें और लोग छोटी-छोटी चिन्ताओंसे मुक्त होकर जीवन-यापन कर सकें। इसीलिये प्राचीन ऋषियोंने जीवनके चार मुख्य लक्ष्योंमें अर्थ (सम्पत्ति) और काम (सुख) को शामिल किया है।

अधिकांश लोगोंका विश्वास है कि सांसारिक व्यवस्थाको सुचारु-रूपसे चलाने और जीवनको कायम रखनेका काम —जिसे गीतामें लोक-संग्रह कहा गया है, आध्यात्मिक उन्नतिके लिये अहितकर है। अतएव बहुत-से लोग इन कामोंको व्यर्थ मानते हैं; क्योंकि इनमें लगनेसे मनुष्य धार्मिक कृत्योंसे दूर हटता जाता है। यह विश्वास भ्रान्तिपूर्ण है। वास्तविकता तो यह है कि लोक-संग्रह जीवनकी आवश्यकताओंको पूरा करनेके साथ-साथ दैवी गुणोंको प्राप्त करने और सत्कर्मोंकी आदत डालनेका एकमात्र साधन है। जीवनके इन कर्तव्योंकी अवहेलना करनेसे अनाचार और पाप बढ़ते हैं, जिनके तथा अकर्मण्यताके फलस्वरूप समाज अस्त-व्यस्त होकर अन्ततः नष्ट हो जाता है।

धर्मका तीन चौथाईसे ज्यादा अंश सांसारिक कार्योंपर अवलम्बित है और मनुष्य इन कामोंको सुचारुरूपसे करके ही

आध्यात्मिकता प्राप्त कर सकता है। शास्त्रोंके अनुसार धर्मके चार चरण हैं—सत्य, शौच, दान और तपस्या। पूजा, जप आदि कृत्य 'तपस्या' के अन्तर्गत आते हैं, इसलिये इन सबको मिलाकर भी धर्मका एक चरण मुश्किलसे बनता है। अन्य तीन चरणोके सहयोगके बिना और केवल तपस्यापर आधारित धर्म मानव-समाजका भार वहन करनेमें एकदम असमर्थ रहेगा।

स्वामी विवेकानन्दने कहा—"देशमें जबतक एक कुत्ता भी भूखा रहेगा, मेरा सारा धर्म यही होगा कि उसे खाना खिलाया जाय।" महात्मा गाँधीने भी कहा था कि निर्धन व्यक्तिके लिये अर्थ ही आध्यात्मिकता है। इन लाखों भूखे लोगोंसे आप और कोई अपील नहीं कर सकते; उसको अनसुनी कर देंगे। उनके पास मै कामके पवित्र संदेशके साथ ही भगवान्‌का संदेश ले जा सकता हूँ। अच्छा नाश्ता कर लेनेके बाद तथा और भी अच्छे भोजनकी आशामें बैठकर ईश्वरकी चर्चा करना आसान है। पर इन असंख्य लोगोंसे, जिन्हे दो जून भोजन भी नहीं मिल पाता, मै ईश्वर की चर्चा किस प्रकार करूँ? इनके सामने भगवान् रोटी-दालके रूपमें ही आ सकता है।

आध्यात्मिकताका विकास तभी हो सकता है जब पूजा-धर्म और सेवा-धर्मका सम्यक् संतुलन जीवनमें हो। पूजाको सेवामें फलीभूत करना चाहिये और सेवा इस भावनासे करनी चाहिये मानो ईश्वरकी आराधना कर रहे हों।

पूजा और सेवा समान हैं

मानव-जीवन परमात्माकी अनुपम देन है । इसके लिये गीतामें 'शरीर-यात्रा' शब्दका प्रयोग किया गया है (३ । ८) सारा संसार ईश्वरसे ओत-प्रोत है । इसलिये संसारमें रहना सचमुच एक यात्रा, एक पुण्य कार्य और पूरी-पूरी आराधना ही है। जिन कामोंसे जीवनका अनुक्षण होता है, वे पूजाके लिये आवश्यक ही नहीं, अपितु स्वयंमें पूजा हैं । इस प्रकारके कार्य उस परमेश्वरकी उपासना है जो सब जीवोंमें आसीन और सर्वव्यापी हैं । गीतामें श्रीकृष्णने कहा है ।

"इससे तू अनासक्त हुआ निरन्तर कर्तव्यकर्मका अच्छी तरह आचरण कर; क्योंकि अनासक्त पुरुष कर्म करता हुआ परमात्माको प्राप्त होता है (३—१९) ।"

इसी प्रकार आगे चलकर श्रीभगवान्‌ने पुनः आदेश किया है—

अर्थात्—"प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने कर्ममें तन्मय होकर परम सिद्धिको प्राप्त कर लेता है; क्योंकि उसीके द्वारा वह ईश्वरकी पूजा करता है । जिससे प्राणिमात्रकी प्रवृत्ति हुई है और जो सभी जीवोंमें व्याप्त है ।" (१८ । ४५-४६)

गीताके कई अन्य श्लोकोमे भी यही उपदेश दिया गया है—

"बालबुद्धिवाले न कि ज्ञानी सांख्य और योगको अलग-अलग समझते है । जो एकमे दृढ है वह दोनोंके फल पाता है । जिस

स्थानपर सांख्य पहुँचते हैं, वहीं योगी भी पहुँचते हैं। जो दोनोंको (फलरूपसे) एक देखता है, वही यथार्थ देखता है।"

कर्मफलकी आशा न कर जो अपना कर्तव्य पालन करता है, वह संन्यासी और योगी दोनों है। मात्र यज्ञ और कर्मका त्याग करनेवाला सन्यासी नहीं है। अतः हे अर्जुन! जिसको लोग संन्यास (सांख्य) कहते हैं वही योग है; क्योंकि स्वार्थपूर्ण इच्छाओंके त्यागके बिना कोई योगी नहीं बन सकता।

स्वामी विवेकानन्दने बड़े जोरदार शब्दोंमें कहा था—

चाहे किसी व्यक्तिने एक भी दर्शनशास्त्र न पढ़ा हो, चाहे वह किसी देवताको न मानता हो और न पहले कभी माना हो, चाहे उसने जीवनभर प्रार्थना न की हो, फिर भी यदि उसने अच्छे कर्मोंकी शक्तिद्वारा ऐसी अवस्था प्राप्त कर ली है कि वह अपना जीवन और सर्वस्व दूसरोंके लिये बलिदान करनेके लिये तैयार है, तो उसको वही स्थान मिल गया है जहाँ कोई भी भक्त अपनी प्रार्थनाओंद्वारा और दार्शनिक अपने ज्ञानद्वारा पहुँचता है।

आध्यात्मिकताके नियम

पूजा-धर्म हमारे धर्मकी विशिष्टता है और शास्त्रोंने इसपर जितना बल दिया है, वह उचित ही है। पर इससे यह नहीं समझ लेना चाहिये कि शास्त्र सेवा-धर्मको अनुपयोगी या ध्यान साधनाके लिये तैयारी मात्र मानते है। शास्त्रोंने साफ-साफ शब्दोंमें इस बातकी घोषणा की है कि सेवा ही आध्यात्मिकताका प्राण और धर्मकी धुरी है।

शरीर, वाणी और मनद्वारा किए हुए तपकी क्रमशः पूजा, जप और ध्यान बताते हुए गीतामें तपस्याको तीन श्रेणियोमे बॉटा गया है—

"पूर्वोक्त तीन प्रकारके तप जो साधक अगाध श्रद्धाके साथ निष्कामभावसे करता है, उस तपस्याको सात्त्विक कहते हैं। जो तप सत्कार, मान और पूजा प्राप्त करने या दिखावेके लिये किये जाते हैं एवं जो अस्थायी या क्षणिक है, वह राजस कहे गये हैं। भ्रान्त बुद्धिसे, स्वयको यातना देकर या दूसरोंके अनिष्टके लिये किया गया तप तामस कहा गया है। (१७ । १७–१९)

गीताने समस्त कार्यो और, कार्य करनेवालोंको तीन श्रेणियोंमें रखा है—सात्विक, राजसिक और तामसिक (१८ । २३, २८)। भागवतमें श्रीकृष्णने भक्तोको तीन प्रकारका बताया है—

"जब स्त्री या पुरुष मेरी पूजा अत्यन्त निष्ठासे करते हैं और बिना स्वार्थके अपना कर्तव्य पालन करते हैं तब उनको सात्त्विक प्रवृत्तिका जानना चाहिये।"

"जब वे धन या वरदान अथवा अपनी कामना-पूर्तिके लिये मेरी पूजा करते है तब उनको राजसिक प्रवृत्तिका और जब वे मेरी पूजा दूसरोको क्षति पहुँचानेके प्रयोजनसे करते हैं तब उन्हें तामसिक प्रवृत्तिका जानना चाहिये।"

सत्त्वसे आध्यात्मिक विकास होता है, तामससे ह्रास होता है और राजससे मनुष्य गतिशील होते हुए भी प्रगति नहीं कर पाता। इससे यह स्पष्ट है कि आध्यात्मिकताकी कुञ्जी पूजा नहीं, बल्कि

निःस्वार्थ सेवा है। अहकारी, लोभी या भ्रष्ट व्यक्ति जप, ध्यान या पूजाकी मात्रा बढानेसे न तो सात्त्विक बन सकता है और न अपनी आध्यात्मिक उन्नति कर सकता है। यह तो तभी सम्भव है जब वह व्यक्ति बुरी आदतोका परित्याग करे और आत्म-सयम, दया, दान, कर्त्तव्यपालन और सदाचारका मार्ग अपनाये।

अपने पितृ, गुरु या साधुओकी आत्माकी आरती, भजन या ध्यानद्वारा उपासना करना, परन्तु उनके जीवन-कालमे उनके खान-पान, सुख-सुविधापर ध्यान न देना हास्यास्पद नहीं तो और क्या है? परम-आत्माकी आराधना करना, किन्तु ईश्वरके विराट्-स्वरूप विश्व और इसके निवासी जीवोकी आवश्यकताओंकी उपेक्षा करना कोई विवेकपूर्ण बात नहीं है। भागवतमें इस सिद्धान्तको सुन्दर रूपसे बताया गया है।

मै समस्त जीवोंकी आत्मा हूँ और सब जीवोंमें सदैव उपस्थित हूँ। सब जीवोमें स्थित मुझ परमेश्वरकी उपेक्षा करके मानव मूर्ति-पूजाका आडम्बर करता है। उस मनुष्यसे मैं किंचिन्मात्र भी सतुष्ट नहीं होता जो विभिन्न प्रकारकी सामग्रीसे मेरी पूजा करता है, पर सब जीवोंका अपमान करता है। अतएव हर व्यक्तिको सम्मान, सब प्राणियोंको आदर-सत्कार और बिना भेदभावके सद्भावना देकर करना चाहिये; क्योकि मै सब जीवोंकी आत्मा हूँ और मेरा मन्दिर सबके अन्दर है।"

पूजासे सेवा श्रेष्ठतर है

कई सबल कारणोंसे सेवा-पूजासे श्रेष्ठ है। लोकसेवाके कार्य—चाहे वह स्वार्थवश ही किये गये हो—समाजकी कुछ भलाई

तो करते ही हैं। पर धार्मिक कृत्य, जबतक वह लोकहितके उद्देश्यसे न किये जायँ, समाजके उत्थान या अनुरक्षणमें सहायक नहीं हो सकते। ऐसा बहुत कम देखनेमें आता है कि धार्मिक कार्य जन-साधारणके हितके लिये किये जायँ। सेवा-कार्योंसे ही सत्य-समानता और दया-जैसे गुणोंके अभ्यासका अवसर मिलता है। गीतामें स्पष्टरूपसे कर्मको सांख्यसे ऊँचा माना गया है।

"त्याग (या सांख्य) और कर्मयोग दोनों परम आनन्दको पहुँचाते हैं। परंतु इन दोनोंमें कर्मयोग कर्मत्यागसे श्रेष्ठ है।"

सर्वश्रेष्ठ योगी वह है जो सबके दुःख-सुखको अपने दुःख-सुखके समान जानता है।

गीतामें एक अन्य ध्यान देने योग्य लेकिन कम प्रचलित श्लोक है, जिसमें कहा गया है कि कर्मफलका त्याग ध्यानसे श्रेष्ठतर है और शीघ्र ही शान्ति प्रदान करता है। कर्मत्याग निश्चय ही ध्यान और जपका स्थान नहीं ले सकता, लेकिन साधनाके अन्तिम चरणके रूपमें नितान्त आवश्यक है। धार्मिक कार्य मानवको निर्मल नहीं कर सकते, न उसे शान्ति या सिद्धि दे सकते हैं, जबतक कि उनसे प्राप्त फलका उपयोग समाजके हितके लिये न हो। यदि साधक अपनी उपलब्धिका केवल संग्रह करता है और लोकहितके लिये उसे समर्पित नहीं करता तो वह पापका भागी है। गीताके अनुसार ऐसा व्यक्ति चोर या पापी है, उसका जीवन निरर्थक है (३। १३, १६) और वह न इस लोकमें न परलोकमें ही आनन्द प्राप्त कर सकता है (४। ३१)।

इससे भी बुरा व्यक्ति वह है जो साधनाद्वारा प्राप्त शक्तिको असामाजिक कामोंमें लगाता है—वह पैशाचवृत्ति प्राप्त करता है और अपने पैरोंपर खुद कुल्हाड़ी मारता है (१६ । १८, १९)। हिन्दू पौराणिक कथाओंके राक्षस और पाश्चात्य धर्मके शैतानोंने साधना और तपस्याद्वारा अलौकिक शक्तियाँ अर्जित की थीं, पर इन शक्तियोंका प्रयोग पैशाचिक कार्योंके लिये किया। आजके समाजमें बहुत-से लोग हैं जो धार्मिक प्रवृत्तिके होते हुए भी वास्तवमें स्वार्थी, समाज-विरोधी या दुराचारी हैं; क्योंकि उन्होंने अपनी साधनाको निःस्वार्थ या सात्त्विक नहीं बनाया है।

भागवतमें इस विचारका बड़े सारपूर्ण रूपसे प्रतिपादन किया गया है—"मुझे यज्ञके कृत्यों या कर्मकाण्ड और तपस्याके द्वारा सरलतासे प्राप्त नहीं किया जा सकता; लेकिन मैं उनके सामने प्रकट होता हूँ जो मुझे समस्त जीवोंमें और मुझमें समस्त जीवोंको देखते हैं।"

सेवा और पूजा दोनों कार्य जीवनके अन्तिम क्षणतक बराबर चलते रहने चाहिये।

स्वधर्मका सिद्धान्त

आवश्यक वस्तुओं एवं सेवाओंकी पर्याप्त और नियमित पूर्तिको कायम रखनेके लिये प्रत्येकको कठिन परिश्रम करना आवश्यक है। आध्यात्मिकता समाजमें तभी पनप सकती है जब प्रत्येक व्यक्ति सबके कल्याणके लिये अधिकाधिक योगदान दे।

समाजका प्रत्येक व्यक्ति न तो एक ही काम कर सकता

और न ही करना चाहिये। सम्पूर्ण समाजकी कुल आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये अलग-अलग व्यवसायोंमें पर्याप्त संख्यामें लोग कार्यरत हों और अपने-अपने कामको दक्षतासे करें तभी समाज सुचारुरूपसे चल सकेगा। समाजको भगवान्‌का रूप मान कर कुछ लोग अवश्य ही केवल धर्मका पठन-पाठन और ईश्वरकी पूजा करेंगे। पर अधिकांश लोग अपने व्यवसायके लौकिक कार्योंको सम्पन्न करके आराधना करेंगे—चिकित्सक चिकित्सा करके, दर्जी सिलाई करके और किसान खाद्यान्नोंको पैदा करके।

स्वधर्मके सिद्धान्तके अनुसार व्यक्ति अपने कर्तव्यके प्रति निष्ठावान होकर ईश्वरकी सर्वोच्च आराधना कर सकता है। जीवन-निर्वाहके कार्य मनुष्यका अधिकांश समय और शक्ति ले लेते हैं, पर ये सब काम ईश्वर-प्राप्तिकी साधनाओंसे भिन्न नहीं हैं। इनको अलग मानना अविवेकपूर्ण ही नहीं, हानिकारक भी है। धर्मकी व्यवस्थामें प्रत्येक व्यवसायको मान्यता और यथोचित स्थान दिया गया है। सांसारिक व्यवसायोंका तिरस्कार करना और लोगोंको उनसे हटाकर केवल धार्मिक क्रियाओंमे लगाना मानवता और परमात्मा दोनोंके प्रति अपराध है। गीताने चेतावनी दी है—"पर-धर्मो भयावहः।" हिन्दीमें कहावत है—"जिसका काम उसीको साजे।" इसी संदर्भमे भागवतमें लिखा है कि एक संन्यासीके लिये वासनाओंका शिकार बन जाना और एक गृहस्थके लिये अपने कर्तव्योंको छोड़ देना—दोनों ही बातें पाखण्डपूर्ण और अवाञ्छनीय हैं।

आपसी सहयोगकी आवश्यकता मनुष्यको कदम-कदमपर पड़ती है, स्वार्थ-पूर्ति भी तो परस्पर सहायताके बिना नहीं हो सकती। जहाँ लोग एक दूसरेका ध्यान रखते हैं वहाँ सभीका भला होता है। इसे गीतामें "यज्ञ' की संज्ञा दी गयी है। यह भगवान्का अटल नियम है जो सृष्टिके आदिसे ही लागू है। परमात्माको समर्पित किये जानेवाले, यानी उसके प्राणियोंके हितके कार्य मुक्ति दिलाते हैं। अपने ही हितके काम मनुष्यको माया-मोहमें फँसाते हैं—यह बात जप, पूजा-पाठ और ध्यान, तपस्यापर भी लागू है। लोककल्याणके कर्मोंमें परमात्मा स्वयं विद्यमान हैं। भगवत्प्राप्ति केवल धार्मिक चेष्टाओंसे ही नहीं, निःस्वार्थ सेवासे भी सम्भाव्य है।

ज्ञानियोंको भी परिश्रमरत होना चाहिये

हमारे देशमें आम धारणा है कि लोक-सेवाके कामोंसे मनुष्यका ध्यान पूजा-पाठमें अच्छी तरह लगने तो लगता है, पर ये काम उसे मुक्ति नहीं दिला सकते। परहित करना एक घटिया विचारधारा है जिससे भगवत्-दर्शन नहीं हो सकते—भगवत्प्राप्ति केवल बुद्धि या ज्ञानसे ही हो सकती है। जिसने ज्ञान हासिल कर लिया है उसे समाजके लिये काम करनेकी जरूरत नहीं। इस प्रकारकी भ्रान्तियोंके विपरीत गीतामें शिक्षा दी गयी है।

"अतः तुम अपना निर्धारित कर्तव्य करो, क्योंकि निष्क्रियतासे कार्य श्रेष्ठ है। क्रियाहीन होकर तुम अपने शरीर तक की रक्षा नहीं कर सकते।" (३—८)

"जिस प्रकार अविवेकी आसक्तिसे कार्य करता है, उसी प्रकार विवेकी व्यक्तिको सांसारिक व्यवस्थाकी रक्षाके लिये निरासक्त होकर कार्य करना चाहिये।" (३—२५)

"यज्ञ, दान और तपके कार्योंको त्यागना नहीं चाहिये, अपितु इनको हर हालतमें करना चाहिये; क्योंकि ये बुद्धिमानोंको भी पवित्र करते है । अतः मेरा सुविचारित एवं सर्वश्रेष्ठ मत है कि यज्ञ, दान व तपके कार्य एवं अन्य सब कर्तव्य आसक्ति तथा फलोंको त्याग-कर सम्पन्न किये जाने चाहिये ।" (१८ । ५-६)

श्रीकृष्णने अपनेको एक अथक कार्यकर्ता बताया है । यद्यपि उन्हे अपने लिये किसी वस्तुकी आवश्यकता नहीं है, फिर भी वे अविरल गतिसे ससारकी भलाई और दूसरोंके लिये उदाहरणस्वरूप कार्य करते रहते हैं । केवल लोक-संग्रहके कार्य करके जनक एवं अन्य मनीषियोने सिद्धि प्राप्त की थी (३ । २०) ।

प्रत्येक विवेकशील व्यक्तिको केवल अपने कर्तव्योका ही पालन नहीं करना है; बल्कि दूसरोको भी अपने-अपने कर्तव्योंका पालन करनेके लिये प्रेरणा देनी है ।

"ज्ञानी पुरुषको चाहिये कि कर्मोंमें आसक्तिवाले अज्ञानियोंकी कर्मोंमें अश्रद्धा उत्पन्न न करे किंतु स्वय परमात्माके स्वरूपमे स्थित हुआ और सब कर्मोंको अच्छी प्रकार करता हुआ उनसे भी वैसे ही कराये ।" (३ । २६)

ईश्वरकी व्यवस्थाके अन्तर्गत मानसिक एव शारीरिक स्वास्थ्यके लिये काम करना उतना ही जरूरी है जितना भोजन और पानी ।

यह एक विज्ञान-सम्मत तथ्य है कि कार्य करनेकी शक्तिके साथ-साथ उस शक्तिका उपयोग करनेकी इच्छा भी रहती है। उस शक्तिके उपयोग न करनेसे रोग एवं दुःख उत्पन्न होते हैं।

बुद्धिमान् लोगोंको काम करनेसे छूट नहीं है। उनपर तो औरोंके लिये उदाहरण प्रस्तुत करनेका विशेष दायित्व है ताकि वे जन-साधारणका पथ प्रदर्शन कर सकें। जो व्यक्ति जितना महान् है, उसकी उतनी ही बड़ी जिम्मेदारी समाज, राष्ट्र और विश्वके कल्याणके लिये है।

कुछ व्यक्ति अपनेको इतना बुद्धिमान् या पूर्ण समझते हैं कि उनको अधिकार और सुविधाएँ ही चाहिये। न तो वे कुछ करते है और न कुछ करनेकी जिम्मेदारी समझते हैं। ऐसे लोगोंको श्रीकृष्ण भगवान्की चेतावनी याद रखनी चाहिये कि जो समाजके हितके लिये कुछ भी नहीं करते वे चोर और पापी हैं। ऐसे ही मनुष्योंके लिये स्वामी विवेकानन्दकी उद्घोषणा है—

"यदि तुम केवल अपने मोक्षके लिये प्रयत्नशील हो तो तुम नरकमें जाओगे। तुम्हे दूसरोंके मोक्षके लिये प्रयास करना चाहिये। ऐसा करनेमें यदि तुम्हे नरक जाना पडे तो वह अपने मोक्षद्वारा स्वर्ग-प्राप्तिसे अच्छा है। मानव-जीवनका समस्त ध्येय एक शब्दमें बताया जा सकता है—निःस्वार्थता। पूर्णरूपसे निःस्वार्थ होना मोक्ष ही है; क्योंकि भीतरका मनुष्य मर जाता है और केवल परमात्मा ही शेष रहता है।"

अपने कुटुम्बके, समाजके और व्यवसायके सभी काम भगवान्‌के बताये हुए कर्तव्य और लोक-सेवा समझकर करने चाहिये। हर काममें दूसरोंकी भलाई ही मुख्य उद्देश्य होना चाहिये।

भक्तोंकी श्रेणियाँ

भागवतमे भक्तोका वर्गीकरण सहवर्गियोंके प्रति रुख और सेवा-भावनाके आधारपर किया गया है, ईश्वर-भक्तिकी गहराईके आधारपर नहीं। ऐसा कहा गया है—

"जो प्रत्येक चेतन या जड वस्तुमें ईश्वरकी उपस्थिति अनुभव करता है, उसका ही स्वरूपान्तर देखता है और समस्त वस्तुओंको ईश्वरका ही अंश समझता है, वही पूर्ण भक्त है और परमात्माके उपासकोमें सर्वश्रेष्ठ है। जो अपनेको समस्त प्राणियोंमें और समस्त प्राणियोंको अपनेमें स्थित ईश्वरमें देखता है वह सर्वोच्च भक्त है।"

"जिसके मनमें ईश्वरके प्रति प्रेम एवं आदर है, ईश्वरके आश्रितो और अन्य भक्तोके प्रति मित्रताका भाव है, अज्ञानीके प्रति दयाभाव है, किंतु जो ईश्वरके शत्रुओं और उसका तिरस्कार करनेवालोंके प्रति उदासीनता रखता है, वह मध्यम श्रेणीका साधक है।"

"जो केवल प्रतिमामें स्थित ईश्वरकी उपासना करता है, लेकिन उसके भक्तों अथवा अन्य प्राणियोकी सेवा नहीं करता, वह साधारण श्रेणीका भक्त है।"

"जो केवल मन्दिरमें ईश्वरकी पूजा करता है, किंतु अन्य प्रकारकी पूजा करनेवालोंके प्रति सहनशील नहीं है और

सर्वत्र ईश्वरकी सत्ता नहीं देख पाता वह प्रारम्भिक कोटिव भक्त है ।"

प्रारम्भिक या मध्य श्रेणीकी उपासना तिरस्कारयोग नहीं है; क्योंकि इनकी अपनी उपयोगिता है। किंतु ऐसे भक्तोंको लगातार सर्वश्रेष्ठ उपासनाकी ओर बढ़ते रहना है। श्रीकृष्णने भागवतके अन्तमें सर्वश्रेष्ठ उपासनाकी इस प्रकार व्याख्या की है—

"मेरे मतानुसार सबसे उत्तम पूजा है समस्त प्राणियोंको मेरे स्वरूप मानना और मन, वचन, कर्मसे उनके प्रति समुचित आचरण करना ।"

प्रचलित धर्म अपनेमें ईश्वरको देखनेको कहता है। इस विचारधारासे दूसरे मनुष्योंसे अपनी पूजा या सेवा करानेकी इच्छा जाग्रत् होती है और दूसरोंकी सेवा करनेसे मन हटता है ।

प्राचीन ऋषियोंको जरा भी शंका नहीं थी कि धर्मका सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व क्या है—सांख्य या योग, पूजा-पाठ या सदाचरण। मनुके अनुसार "नैतिकता या सदाचार सर्वोच्च धर्म है। ······संतोंने सदाचारको तपस्याका आधार माना है। शास्त्रोंमें [illegible] कर्तव्योंका पालन करनेवाला मनुष्य इस लोकमें यश पाकर परलोकमें परम आनन्द पाता है ।"

वाल्मीकिरामायणमें कहा गया है "सदाचारसे समृद्धिकी उत्पत्ति है। सदाचारसे आनन्दका उद्भव है। सदाचारके

माध्यमसे व्यक्ति सब कुछ प्राप्त करता है और सदाचार ही विश्वका सार है।"

तुलसीदासजीने कहा है—

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीडा सम नहिं अधमाई॥
पर हित बस जिन्हके मन माही। तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाही॥
निर्नय सकल पुरान बेद कर। कहेउँ तात जानहिं कोबिद नर॥

मानवके विकासके लिये सेवा और पूजा दोनो आवश्यक हैं; लेकिन दोनोंको एक-दूसरेका नाशक नहीं बल्कि पूरक और सहयोगी होना चाहिये। आध्यात्मिकताका आधार और जीवनका पोषक होनेके कारण इन दोनोंमेंसे सेवा प्रमुख है। यह बात चाहे कुछ विचित्र लगे, पर सच तो यह है कि ईश्वरके निर्बल, अपूर्ण और दीन-रूपो-जैसे पशु-पक्षी, मनुष्य, पर्वत, सरिता और जगल, घर, पाठशाला और कारखानाकी आराधना स्वर्गमें बैठे सर्वशक्तिमान, सम्पूर्ण और अविनाशी ईश्वरकी आराधनासे श्रेष्ठ है।

देशभक्ति सर्वोच्च धर्म है

भगवान्‌के प्रति निष्ठा तभी हो सकती है जब मनुष्यके प्रति स्नेह हो। दूसरे शब्दोंमें देश-प्रेम सर्वोच्च धर्म है। बहुतसे आधुनिक संतोंके मनमें यह भावना प्रचुर मात्रामें रही है। स्वामी रामतीर्थने कहा है—

"जैसे एक शैव शिवकी, वैष्णव विष्णुकी, बौद्ध बुद्धकी, ईसाई ईशाकी, मुसलमान मोहम्मदकी आराधना करता है, वैसे ही

साथ ईश्वरकी सत्ता नहीं है। मानो वह प्रारम्भिक कोटिका मात्र है।"

प्रारम्भिक या मध्य श्रेणीकी उपासना तिरस्कारयोग्य नहीं है; क्योंकि इनकी अपनी उपयोगिता है। किंतु ऐसे भक्तोंको स्वभावतः सर्वश्रेष्ठ उपासनाकी ओर बढ़ते रहना है। श्रीकृष्णने भागवतके अन्तमें सर्वश्रेष्ठ उपासनाकी इस प्रकार व्याख्या की है

"मेरे मतानुसार सबसे उत्तम पूजा है समस्त प्राणियोंको मेरे स्वरूप मानना और मन, वचन, कर्मसे उनके प्रति समुचित आचरण करना।"

प्रचलित धर्म अपनेमें ईश्वरको देखनेको कहता है। इस विचारधारासे दूसरे मनुष्योंमे अपनी पूजा या सेवा करानेकी इच्छा जाग्रत् होती है और दूसरोंकी सेवा करनेसे मन हटता है।

प्राचीन ऋषियोंको जरा भी शंका नहीं थी कि धर्मका सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व क्या है—सांख्य या योग, पूजा-पाठ या सदाचरण। मनुके अनुसार "नैतिकता या सदाचार सर्वोच्च धर्म है। ......संतोंने सदाचारको तपस्याका आधार माना है। शास्त्रोंमें प्रतिपादित कर्तव्योंका पालन करनेवाला मनुष्य इस लोकमें यश पाकर परलोकमें परम आनन्द पाता है।"

वाल्मीकिरामायणमें कहा गया है "सदाचारसे समृद्धिकी उत्पत्ति है। सदाचारसे आनन्दका उद्भव है। सदाचारके

माध्यमसे व्यक्ति सब कुछ प्राप्त करता है और सदाचार ही विश्वका सार है।"

तुलसीदासजीने कहा है—

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीडा सम नहिं अधमाई॥
पर हित बस जिन्हके मन माही। तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाही॥
निर्नय सकल पुरान बेद कर। कहेउँ तात जानहिं कोबिद नर॥

मानवके विकासके लिये सेवा और पूजा दोनो आवश्यक हैं; लेकिन दोनोको एक-दूसरेका नाशक नहीं बल्कि पूरक और सहयोगी होना चाहिये। आध्यात्मिकताका आधार और जीवनका पोषक होनेके कारण इन दोनोमेंसे सेवा प्रमुख है। यह बात चाहे कुछ विचित्र लगे, पर सच तो यह है कि ईश्वरके निर्बल, अपूर्ण और दीन-रूपो-जैसे पशु-पक्षी, मनुष्य, पर्वत, सरिता और जंगल, घर, पाठशाला और कारखानाकी आराधना स्वर्गमें बैठे सर्वशक्तिमान, सम्पूर्ण और अविनाशी ईश्वरकी आराधनासे श्रेष्ठ है।

देशभक्ति सर्वोच्च धर्म है

भगवान्‌के प्रति निष्ठा तभी हो सकती है जब मनुष्यके प्रति स्नेह हो। दूसरे शब्दोंमें देश-प्रेम सर्वोच्च धर्म है। बहुतसे आधुनिक संतोंके मनमें यह भावना प्रचुर मात्रामें रही है। स्वामी रामतीर्थने कहा है—

"जैसे एक शैव शिवकी, वैष्णव विष्णुकी, बौद्ध बुद्धकी, ईसाई ईशाकी, मुसलमान मोहम्मदकी आराधना करता है, वैसे ही

भारतको उसकी प्रत्येक संतानके रूपमें देखो और उसकी आराधना करो ।"

"भारत मां ! मैं तुम्हारी हर अभिव्यक्तिकी उपासना करता हूँ। हे मेरी गङ्गाजी, मेरी काली, मेरे इष्टदेव, मेरे शालिग्राम !"

"कोई व्यक्ति कभी भी परमात्मासे एकत्व अनुभव नहीं कर सकता, जबतक उसके शरीरके हर तन्तुमें सम्पूर्ण राष्ट्रसे एकत्वका स्पन्दन न हो ।"

"हमारे व्यक्तिगत और स्थानगत धर्मको राष्ट्रधर्मसे उच्च स्थान कभी नहीं दिया जाना चाहिये ।"

स्वामी विवेकानन्दने और भी दृढतापूर्वक कहा है—

"इतनी तपस्याके बाद मैं जान पाया हूँ कि सर्वोच्च सत्य यह है—वह प्रत्येक प्राणीमें स्थित है । यह सब उसीके असंख्य रूप हैं और किसी ईश्वरकी खोज नहीं करनी है । जो सब प्राणियोंकी सेवा करता है, वही ईश्वरकी सच्ची आराधना कर रहा है ।······ आगामी पचास वर्षोंके लिये हम अनेकों देवी-देवताओंको अपने मनसे भुला दें । एक ही ईश्वर जागृत है—मानव-जाति हर जगह उसके हाथ-पैर और कान दिखायी देते हैं । अन्य सब देवता सुषुप्तावस्थामें हैं ।······प्रमुख आराधना विराट्‌रूपकी है जो हमारे, चारों ओर है ।······ पशु और मानव सभी प्राणी हमारे देव हैं । जिनकी आराधना हमें सर्वप्रथम करनी है, वह हमारे देशवासी ही हैं ।"

यह खेदकी बात है कि सेवाधर्म हमारे देशमें उपेक्षित रहा है; यही हमारे सब कष्टोंकी जड़ है। इसी कारण हम अत्यन्त व्यक्तिवादी और स्वार्थी बन गये हैं। अकर्मण्यता, अनुशासनहीनता और भ्रष्टाचार हमारे राष्ट्रका खून चूस रहे है। जगह-जगह उच्चतम स्तरतक शक्ति, समृद्धि और पदके लिये अशोभनीय संघर्ष दिखायी देता है। जबतक स्वार्थकी पूर्ति होती है, लोगोंको इस बातकी चिन्ता नहीं है कि उनके देश या संगठनपर क्या बीत रही है।

सेवा-भावकी वृद्धि करनेके लिये कड़े परिश्रम, आत्मानुशासन, विनम्रता, कर्तव्यनिष्ठा और मानव-प्रेम आवश्यक हैं। अपनी साधनाको सार्थक करनेके लिये सेवा, नैतिकता और दानको धार्मिक कर्तव्योंमें समुचित स्थान दिया जाना चाहिये।

आइये, अपने शास्त्रोंके सही अर्थको ग्रहण करें। आइये, इस बातको समझें कि आध्यात्मिकताकी जड़ नैतिकता है, ताकि इस ज्ञानसे हम आध्यात्मिकतारूपी वृक्षके फलोंका उपभोग कर सकें। आइये, जाति-पाँति और छुआ-छूतकी कुरीतियोंसे ऊपर उठकर हम अपने देशवासियों, विशेषतया कमजोर, निर्धन और दलित लोगोंके रूपमें भगवान्‌की आराधना करें।

आज सेवाधर्मकी हमें सबसे ज्यादा जरूरत है। भगवान् श्रीकृष्णकी आराधना और उनकी अनुकम्पा प्राप्त करनेका यही सर्वोत्तम उपाय है। राष्ट्रके उत्थानके लिये यही हम सबको ईश्वरका आह्वान है।



बहुमुखी सतत उपासना

हर जगह धर्ममें आराधनाको बहुत ऊँचा स्थान दिया गया है। वास्तवमें धर्मकी सामान्य परिभाषा पूजा ही है जिसमें प्रार्थना, ध्यान, जप इत्यादि सभी शामिल हैं।

आराधनाकी महिमाका बखान धार्मिक नेताओं और आचार्योंने ही नहीं, बल्कि दूसरे महापुरुषोंने भी किया है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक तथा नोबेल पुरस्कारविजेता अलेक्सिस केरलने लिखा है—"प्रार्थना उन सब शक्तियोंमें प्रबलतम है, जिन्हें मनुष्य पैदा कर सकता है। जब हम प्रार्थना करते हैं तो अपनेको उस असीम शक्तिसे जोड़ लेते हैं जो संसार-चक्रको घुमाती रहती है। प्रार्थना करते-करते ही

हमारी मानवीय कमियाँ दूर होने लगती हैं और हम जब उठते हैं तो कुछ शक्ति प्राप्त करके, कुछ सुधरकर ही उठते हैं। हम जब भी ईश्वरको अपनी भावभीनी प्रार्थनासे सम्बोधित करते हैं तो हम शरीर और आत्मा दोनोंको बेहतर बनाते है। ऐसा नहीं हो सकता कि कोई स्त्री या पुरुष क्षणभर भी प्रार्थना करें और उसे कोई लाभ न हो।"

इसी प्रकार महात्मा गाँधीका कथन है—"प्रार्थना ही धर्मका प्राण और सार है। अतः प्रार्थनाहीको मानव-जीवनका केन्द्र होना चाहिये। प्रार्थना ही हमारे जीवनके कार्योंमे व्यवस्था, शान्ति और आराम लानेका एकमात्र साधन है। इस मार्मिक चीजको सँभाल लेनेसे बाकी दूसरी चीजें खुद सँभल जायँगी।

आराधनाकी उपयोगिताके बारेमें साक्षी इतनी अधिक और प्रबल है कि हम उसे बिना संकोचके स्वीकार कर सकते हैं; पर हमें इतना अवश्य याद रखना चाहिये कि पूजाके अच्छे परिणामोंको हमारे बाकी समयके सांसारिक काम यदि बढ़ा सकते हैं तो घटा और बिल्कुल नष्ट भी कर सकते है। मनुष्यका बहुत-सा समय और ध्यान तो इन्हीं कामोमें लगता है। इसलिये उसके आध्यात्मिक विकासपर इन कार्योंका बहुत बड़ा, बल्कि निर्णायक प्रभाव होता है।'

नित्ययोग या सततयोग

गीतामे बारी-बारीसे सभी प्रमुख योगोंकी प्रशंसा की गयी है। इसलिये प्रत्येक व्यक्ति यह दावा करता है कि गीताने उसीके

मनोमस्त योगको प्रधानता दी है। परंतु यह दावा सत्य नहीं है, क्योंकि गीतामें श्रीकृष्णने साफ-साफ कहा है कि कोई व्यक्ति चाहे जैसे भी मेरा भजन करता है, मैं भी उसी ढंगसे उसे भजता हूँ। हर ओरसे मनुष्य जिस मार्गको भी अपनाता है; वह मार्ग मेरा ही है। यह बात समझमें भी आती है, क्योंकि भगवानमें संकुचितता, तानाशाही या साम्प्रदायिकताकी तो कल्पना भी नहीं की जा सकती। वह अवश्य ही सार्वभौमिक तथा निष्पक्ष है। वह अवश्य ही मनुष्यको कुछ-न-कुछ स्वतन्त्रता इस बातकी देता है कि वह अपना रास्ता अपनी रुचि, योग्यता तथा स्थितिके अनुसार खुद चुने। वह किसी विशेष योग, पूजा विधि या सम्प्रदायका पक्ष नहीं ले सकता, न वह जन-साधारण-पर असम्भव शर्तें लाद सकता है। वह यह नहीं कह सकता कि घोड़े गाय बन जायँ या चमेली गुलाब बन जाय। इसलिये वह यह भी नहीं कह सकता कि मजदूर या कारीगर लोगोंका कल्याण ज्ञानी या संन्यासी बने बिना हो ही नहीं सकता।

गीताको ध्यानपूर्वक पढ़नेसे पता चलता है कि गीताका प्रिय योग नित्य या सततयोग है, जिसपर उसने बार-बार जोर दिया है और जिसका अर्थ है—परमात्मासे, उसके त्रिविध पहलुओंसे अपने मन-वचन और कर्मद्वारा हर समय सम्पर्क बनाये रखना। उदाहरणके लिये गीतामें श्रीकृष्णने कहा है—

इसलिये हर समय मुझे याद कर और युद्ध कर (८।७)

इसलिये हर समय योगमें स्थित रह (८।२७)।

जो अनन्यभावसे नित्य-निरन्तर मेरा चिन्तन करता है, जो सदा अपना मन मुझमें लगाये रहता है, वह योगी सहज ही मुझे प्राप्त कर लेता है। (८।१४)

सततयोगके सिद्धान्तको मान लेनेके बाद यह झगड़ा ही समाप्त हो जाता है कि कर्मयोग श्रेष्ठ है तथा ज्ञान, ध्यान तथा भक्तियोग। सारी साधनाका अन्तिम फल भगवान्‌से निरन्तर पक्का और पूरी शक्तिसे योग स्थापित करना है। इस लक्ष्यको प्राप्त करनेके लिये किस योग या किन विशेष योगोंका आधार लिया गया है, इस बातसे जरा भी अन्तर नहीं पड़ता। नित्ययोगका द्वार हर व्यक्तिके लिये खुला हुआ है, चाहे उसका रोजगार, पूजा-प्रणाली या समाजमें स्थान कुछ भी हो।

केवल सततयोगद्वारा ही मनुष्य भगवान्‌से पूर्ण योग स्थापित कर सकता है, जीवनको ऊपर उठा सकता है और अपनेको परमात्माका प्रतिबिम्ब बना सकता है। यदि भगवान्‌से ऐकात्म्य केवल पूजाके थोडेसे क्षणोंमें होता है और बादमें टूटा रहता है, यदि केवल मनको परमात्मासे जोड़ा जाता है, पर बुद्धि, हृदय और हाथ उसके आदेशोंके विपरीत काम करते रहते हैं, यदि अदृश्य, सुदूर, स्वर्गमें रहनेवाले और अगम ईश्वरसे तो योग किया जाता है, पर हमारे चारों ओर रहनेवाले उसके जीते-जागते स्वरूपोंको सताया जाता है, ठुकराया जाता है या उनकी अवहेलना की जाती है, तो उसका योग बिल्कुल अधूरा और क्षणिक होगा और यह बताना बहुत कठिन होगा कि

जो अनन्यभावसे नित्य-निरन्तर मेरा चिन्तन करता है, जो सदा अपना मन मुझमें लगाये रहता है, वह योगी सहज ही मुझे प्राप्त कर लेता है। (८ । १४)

सततयोगके सिद्धान्तको मान लेनेके बाद यह झगड़ा ही समाप्त हो जाता है कि कर्मयोग श्रेष्ठ है तथा ज्ञान, ध्यान तथा भक्तियोग। सारी साधनाका अन्तिम फल भगवान्‌से निरन्तर पक्का और पूरी शक्तिसे योग स्थापित करना है। इस लक्ष्यको प्राप्त करनेके लिये किस योग या किन विशेष योगोंका आधार लिया गया है, इस बातसे जरा भी अन्तर नहीं पड़ता। नित्ययोगका द्वार हर व्यक्तिके लिये खुला हुआ है, चाहे उसका रोजगार, पूजा-प्रणाली या समाजमें स्थान कुछ भी हो।

केवल सततयोगद्वारा ही मनुष्य भगवान्‌से पूर्ण योग स्थापित कर सकता है, जीवनको ऊपर उठा सकता है और अपनेको परमात्माका प्रतिबिम्ब बना सकता है। यदि भगवान्‌से ऐकात्म्य केवल पूजाके थोडेसे क्षणोंमें होता है और बादमें टूटा रहता है, यदि केवल मनको परमात्मासे जोड़ा जाता है, पर बुद्धि, हृदय और हाथ उसके आदेशोंके विपरीत काम करते रहते हैं, यदि अदृश्य, सुदूर, स्वर्गमें रहनेवाले और अगम ईश्वरसे तो योग किया जाता है, पर हमारे चारों ओर रहनेवाले उसके जीते-जागते स्वरूपोंको सताया जाता है, ठुकराया जाता है या उनकी अवहेलना की जाती है, तो उसका योग बिल्कुल अधूरा और क्षणिक होगा और यह बताना बहुत कठिन होगा कि

मनपसद योगको प्रधानता दो है। परंतु यह दावा सत्य नहीं है, क्योंकि गीतामें श्रीकृष्णने साफ-साफ कहा है कि कोई व्यक्ति चाहे जैसे भी मेरा भजन करता है, मै भी उसी ढंगसे उसे भजता हूँ। हर ओरसे मनुष्य जिस मार्गको भी अपनाता है; वह मार्ग मेरा ही है। यह बात समझमें भी आती है, क्योंकि भगवान्‌में संकुचितता, तानाशाही या साम्प्रदायिकताकी तो कल्पना भी नहीं की जा सकती। वह अवश्य हो सार्वभौमिक तथा निष्पक्ष है। वह अवश्य ही मनुष्यको कुछ-न-कुछ स्वतन्त्रता इस बातकी देता है कि वह अपना रास्ता अपनी रुचि, योग्यता तथा स्थितिके अनुसार खुद चुने। वह किसी विशेष योग, पूजा विधि या सम्प्रदायका पक्ष नहीं ले सकता, न वह जन-साधारण पर असम्भव शर्तें लाद सकता है। वह यह नहीं कह सकता कि घोड़े गाय बन जायँ या चमेली गुलाब बन जाय। इसलिये वह यह भी नहीं कह सकता कि मजदूर या कारीगर लोगोंका कल्याण ज्ञानी या संन्यासी बने बिना हो ही नहीं सकता।

गीताको ध्यानपूर्वक पढ़नेसे पता चलता है कि गीताका प्रिय योग नित्य या सततयोग है, जिसपर उसने बार-बार जोर दिया है और जिसका अर्थ है—परमात्मासे, उसके त्रिविध पहलुओंसे अपने मन-वचन और कर्मद्वारा हर समय सम्पर्क बनाये रखना। उदाहरणके लिये गीतामें श्रीकृष्णने कहा है—

इसलिये हर समय मुझे याद कर और युद्ध कर (८।७)।

इसलिये हर समय योगमें स्थित रह (८।२७)।

जो अनन्यभावसे नित्य-निरन्तर मेरा चिन्तन करता है, जो सदा अपना मन मुझमें लगाये रहता है, वह योगी सहज ही मुझे प्राप्त कर लेता है। (८।१४)

सततयोगके सिद्धान्तको मान लेनेके बाद यह झगडा ही समाप्त हो जाता है कि कर्मयोग श्रेष्ठ है तथा ज्ञान, ध्यान तथा भक्तियोग। सारी साधनाका अन्तिम फल भगवान्‌से निरन्तर पक्का और पूरी शक्तिसे योग स्थापित करना है। इस लक्ष्यको प्राप्त करनेके लिये किस योग या किन विशेष योगोंका आधार लिया गया है, इस बातसे जरा भी अन्तर नहीं पड़ता। नित्ययोगका द्वार हर व्यक्तिके लिये खुला हुआ है, चाहे उसका रोजगार, पूजा-प्रणाली या समाजमें स्थान कुछ भी हो।

केवल सततयोगद्वारा ही मनुष्य भगवान्‌से पूर्ण योग स्थापित कर सकता है, जीवनको ऊपर उठा सकता है और अपनेको परमात्माका प्रतिबिम्ब बना सकता है। यदि भगवान्‌से ऐकात्म्य केवल पूजाके थोडेसे क्षणोंमें होता है और बादमें टूटा रहता है, यदि केवल मनको परमात्मासे जोडा जाता है, पर बुद्धि, हृदय और हाथ उसके आदेशोंके विपरीत काम करते रहते हैं, यदि अदृश्य, सुदूर, स्वर्गमें रहनेवाले और अगम ईश्वरसे तो योग किया जाता है, पर हमारे चारों ओर रहनेवाले उसके जीते-जागते स्वरूपोंको सताया जाता है, ठुकराया जाता है या उनकी अवहेलना की जाती है, तो उसका योग बिल्कुल अधूरा और क्षणिक होगा और यह बताना बहुत कठिन होगा कि

ऐसा व्यक्ति अपनी पूजाके फलस्वरूप आध्यात्मिक उन्नति करेगा या अपने क्रिया-कलाप तथा निष्क्रियताके कारण पतनकी ओर जायेगा।

सतत और सम्पूर्ण योग तभी सम्भव हो सकता है, जब जीवनकी समस्त क्रियाओंद्वारा भगवान्से सम्बन्ध स्थापित किया जाय। इसके लिये हमें अपनी विचारधारामें आमूल परिवर्तन करना होगा। भगवत्प्राप्तिकी साधनाको हमें विशाल और उदार बनाना होगा, जिससे उसमें पूजा, प्रार्थना, ध्यान, जप और भजन ही नहीं बल्कि जीवनोपयोगी सारे सांसारिक कार्य भी शामिल हो जायँ। इस महान विचारका संकेत सारी गीतामें मिलता है, जैसे—

अतः सदा अपने कर्तव्योंको कुशलता और अनासक्त होकर करते रहो। अपने कर्मको अनासक्तभावसे करके मनुष्य परमात्माको प्राप्त कर लेता है (३ । १९)

कर्म करके ही जनक आदि मनीषियोंने संसिद्धिको प्राप्त किया। (३ । २०) तुम जो कुछ करो, जो कुछ खाओ, जो कुछ यज्ञमें डालो, जो कुछ दान दो, जो कुछ भी तपस्या करो, वह सब मुझे अर्पण करके करो। इस प्रकार वैराग्य योगमें आसीन होकर कर्मके शुभाशुभ फलोंके बन्धनसे मुक्त होकर तुम मुझे प्राप्त कर लोगे। (९ । २६, २८)

अपने-अपने काममें अनुरक्त और तल्लीन होकर मनुष्य परम सिद्धिको प्राप्त कर लेता है। जिससे सब भूतोंका प्रादुर्भाव हुआ है, जो सारे संसारमें फैला हुआ है, उस (परमात्मा) के

अपने कर्म (कर्तव्य) द्वारा उपासना करके कुछ मनुष्य पूर्णताको प्राप्त कर लेता है। (१८। ४५, ४६)

गीताके अनुसार यज्ञके प्रत्येक कार्यमें ईश्वर स्वयं उपस्थित है, अर्थात् प्रत्येक ऐसे काममें जो समाजके लिये उपयोगी है अथवा संसारकी व्यवस्था बनाये रखनेमे सहायक है (४।२४)। सच तो यह है कि ईश्वर ही ऐसे सब कार्योंका महाभोक्ता है, (५।२९, ९।२४) और अन्तमें उन सबका लाभ भी उसीको पहुँचता है। इससे यह बिलकुल स्पष्ट है कि जन-सेवाके सारे काम पूजा, जप और ध्यानके ही समान परमात्मासे योग कराते हैं।

ईश्वरके विभिन्न पक्ष

परमेश्वर निःसदेह आत्मा है और इसका यह पक्ष मनुष्यकी इन्द्रियो और बुद्धिकी पहुँचसे परे है। अतः आत्माके रूपमें भगवान्‌की आराधना, प्रार्थना, जप, ध्यान और पूजा करके ही की जा सकती हे। यह सब पूजाके परम्परागत तरीके हैं और जन-साधारणकी यह धारणा बन गयी है कि केवल इन्हींके जरियसे मनुष्य भगवान्‌की पूजा कर सकता है। सच्ची बात तो यह है कि यह साधनाएँ मनुष्यके लिये आवश्यक तो हैं पर काफी नहीं; क्योकि परमेश्वरके दूसरे महत्त्वपूर्ण पक्ष भी हैं, जो मानव-जीवनका पालन, पोषण और नियन्त्रण करते हैं और जिनके लिये दूसरे ही प्रकारकी साधना या आराधनाकी आवश्यकता है।

जिस परमेश्वरने इस ससारकी सृष्टि की है, वह अवश्य ही 'इसकी भलाई और उन्नतिमे बड़ी रुचि रखता है। वह सभी प्राणियोंसे

माता-पिता और मित्रकी भाँति प्यार करता है। इसलिये वह स्वभावतः उन लोगोंको पसंद करता है, जो अन्य प्राणियोंसे प्रेम करते हैं, जो उनकी सेवा करते हैं, जो संसारको सुन्दर और सुखमय बनाते हैं। परमपिता परमेश्वरको अपने लिये कुछ नहीं चाहिये, इसलिये उसे प्रसन्न करनेका एक सहज उपाय यह है—जिन्हे वह प्यार करता है, उनकी सेवा की जाय। दूसरी ओर यह भी अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि वह इतना किसी दूसरेसे नाराज नहीं होता, जितना उन लोगोंसे होता है जो दूसरेका अहित, अनादर या उपेक्षा करते हैं।

भगवान् हमारा माता-पिता तो है ही, संसारका शासक भी है। इस नाते वह दुनियामे कानूनकी व्यवस्था बनाये रखता है और धर्मका संरक्षक है। सृष्टिके सुचाररूपसे चलनेको वह इतना महत्त्व देता है कि यदि आवश्यक होता है तो सज्जनोंकी रक्षा, दुर्जनोंके नाश और धर्मकी पुनः संस्थापनाके लिये स्वयं पृथ्वीपर अवतार लेता है। ईश्वरके साम्राज्यमें हमें अच्छे नागरिक बनकर रहना होगा। उसके विधि-विधानकी यदि हम अवहेलना करेंगे तो अवश्य ही हमे दण्ड मिलेगा।

सृष्टिके सुचालनके लिये ईश्वरने हर व्यक्तिको कुछ-न-कुछ काम सुपुर्द कर रखा है। वह इस बातका बहुत ख्याल रखता है कि हर कोई अपने-अपने कामको कुशलता और ईमानदारीसे सम्पादन करें। जो अपने कार्यमें ढिलाई, बेपरवाही या टालमटोल करते हैं

प्रकृतिके नियम बिना किसी रियायतके उनको खबर लेते हैं। हमारे देशमे बहुत-से लोगोंकी यह धारणा बन गयी है कि भगवान्‌ने मनुष्य-को केवल धार्मिक कर्तव्य ही सुपुर्द किये है। जैसा ऊपर समझाया गया है। हमारे शास्त्रोने इस बातको स्पष्ट कर दिया है कि मनुष्यके सारे कर्तव्य भगवान्‌के दिये हुए हैं, भगवान्‌की पूजा है और भगवत्-प्राप्तिके साधन हैं। जीवित मनुष्य ही भगवान्‌का भजन कर सकता है। इसलिये जीवनको बनाये रखना प्रत्येक व्यक्तिका परम कर्तव्य है।

अधिकांश लोग परमेश्वरको सगुण, साकार अर्थात् एक व्यक्ति-विशेषके रूपमें पूजना पसंद करते हैं जो उनकी रक्षा करता है और उनकी प्रार्थनाओंको सुनता है। किंतु सच तो यह है कि सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् होनेके कारण परमेश्वरको न तो स्वय कोई काम करनेकी और न कोई आज्ञा देनेकी ही आवश्यकता है। उसकी असीम शक्ति, जिसे हम प्रकृति कहते हैं, उसीके बनाये हुए अटल नियमोंके अनुसार इस ब्रह्माण्डका निर्माण और संचालन करती है और इस कार्यमे परमेश्वर न तो हर समय आदेश देता रहता है और न निरीक्षण ही करता रहता है।

गीतामे कहा गया है—'यद्यपि मै इस संसारका कर्ता हूँ तो भी मुझे अकर्ता जान (४ । १३)। मेरे निरीक्षणमें प्रकृति सारी चराचर-सृष्टिकी रचना करती है। इसी कारणसे ससारचक्र घूमता रहता है। (९ । १०) वह सचमुच देखता है जो यह देखता

है कि प्रकृति ही सारा काम करती है और पुरुष (परमात्मा) कुछ भी नहीं करता" । (१३ । २९) ।

यह बड़ा अजीब बात है कि चैतन्य पुरुष तो स्वयं कुछ नहीं करता और उसकी ओरसे सारा काम प्रकृति करता है जो कि जड अर्थात् निर्जीव और भावनाशून्य है । जो शक्ति मनुष्यको दंड अथवा पुरस्कार देती है, वह पुरुष नहीं वरन् जड़ प्रकृति ही है । प्रभु या परमात्मा यह निर्णय नहीं करता कि किसने क्या काम किया और किसको क्या फल मिलना चाहिये । यह सब काम प्रकृति करती है (५ । १४) वास्तवमे तो श्रीकृष्णने यह विश्वास दिलाया है कि वे सबमें समानरूपसे विद्यमान हैं और उन्हे किसीसे न तो राग है न द्वेष (९ । २९) ।

प्रकृति ईश्वरहीकी सत्ता-विधि-प्रणाली है । उसके नियम सनातन, अटल और सार्वभौम हैं । वे स्वचालित हैं । भावना-विहीन होनेके कारण प्रकृतिपर प्रार्थना, विनती या भेंट चढानेका कोई असर नहीं पड़ता । प्रकृतिको वशमे करनेका एक यही तरीका है कि उसके नियमोंका पता लगाया जाय और उनका पालन किया जाय । जो उसके नियमोको जान या अनजानमें उल्लङ्घन करते हैं, वे समय आनेपर आप-से-आप और बिना किसी चेतावनीके अवश्य ही सजा पाते हैं ।

मानव-जीवन प्रकृतिके साम्राज्यमें आता है और इसलिये प्रकृतिके नियमोंसे पूरी तरह बँधा रहता है । इन नियमोकी मर्यादाके

अंदर और उसके अनुसार काम करके मनुष्य सब कुछ प्राप्त कर सकता है और इन नियमोंसे छूट पानेका प्रयास करना व्यर्थ है। प्रार्थना, जप, ध्यान आदि आत्माको बल प्रदान करते है, पर उनके साथ-ही-साथ हर वाञ्छनीय पदार्थको पानेके जो आजमाये हुए प्राकृतिक तरीके है, उन्हे भी अपनाना चाहिये। चैतन्यपुरुष और निर्जीव प्रकृतिके बीच कामके बँटवारेको अच्छी तरह समझ लेना चाहिये और उनमेंसे प्रत्येकके अधिकारका उचित ढंगसे सम्मान करना चाहिये। प्रकृतिके नियमोको समुचित महत्ता देनेसे परम पुरुषकी सत्ता या आराधनाका माहात्म्य कदापि नहीं घटता; क्योंकि प्रकृति भी तो आखिर भगवान्का ही एक रूप, पहलू या सेवक है, उससे अलग या स्वतन्त्र कोई चीज तो नहीं।

सर्वत्र धर्मपर यह धारणा छायी हुई है कि परम्परागत ढंगसे ईश्वरकी पूजा करनेमात्रसे ही ईश्वरके प्रति मनुष्यके सारे कर्तव्य पूरे हो जाते हैं एवं मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है। यथार्थमें यह एक मतिभ्रम है और यही मनुष्यके सारे पापो, कष्टो, गरीबी, एवं धर्मके नामपर युद्ध तथा हत्याकांडोंकी जड़ है। क्योकि जब यह मान लिया कि पूजा, जप और ध्यानहीसे सब कुछ मिल जाता है तो नेकी, सदाचार, सचाई, ईमानदारी, कर्तव्यनिष्ठा और परोपकारकी आवश्यकता ही क्या रह गयी। ऐसा धर्म-अधर्म और अनीतिका पोषक बन जाता है और यही कारण है कि जैसे-जैसे धार्मिक गतिविधियाँ बढ़ती जाती हैं उससे भी अधिक तीव्रगतिसे समाजमें भ्रष्टाचार और अत्याचार बढ़ता जाता है।

सर्वोच्च देव

गीतामें कई सुन्दर तुलनाएँ की गयी हैं। उनमें सबसे मार्मिक यह विवरण है, जिसमें सर्वोच्च देव और अन्य देवताओं (७।२०, २३, ९।२५), अव्यक्त और परम अव्यक्त (४।१८-२१), तथा पुरुष और पुरुषोत्तम (१५।१६-१८) की तुलना की गयी है और जिसमें श्रीकृष्णको सर्वश्रेष्ठ देव बतलाया है और... विश्वरूपका दर्शन कराया है।

गीतामें लिखा है "जिसकी बुद्धि वासनाओंके वशीभूत है, वे अन्य देवताओंकी उपासना करते हैं। वे अपनी प्रकृतिके अनुसार अनेक बाहरी साधनाओंका आश्रय लेते हैं (६।२०); इन तुच्छ बुद्धियोंको सीमित ही फल प्राप्त होता है। देवताओंके उपासक देवताओंको प्राप्त करते हैं, परतु मेरे उपासक मेरे पास पहुँचते हैं।" (६।२३)

जब उच्चतम देवकी उपासनासे ही मोक्ष-प्राप्ति हो सकती है, तब उनमें तथा अन्य देवताओंमें और उनकी उपासना-विधियोंमें जो अन्तर है, उसे स्पष्टरूपसे समझ लेना अति आवश्यक हो जाता है।

अपने धर्मके संस्थापक तथा अन्य नेताओंकी प्रशंसा करने तथा दूसरोंकी बुराई करनेका तो धार्मिक क्षेत्रोंमें रिवाज ही है। किंतु श्रीकृष्णका यह तरीका न था। उन्होंने शालीनताका उपदेश दिया (१६।३) और उसपर अमल भी किया।

गीतोपदेशके समय वे अर्जुनके रथके सारथी थे। यह कार्य उनकी आयु और मर्यादाके बिल्कुल अनुरूप न था।

*

अनेक दूसरे महत्त्वपूर्ण अवसरोंपर भी उन्होंने स्वेच्छासे छोटे दायित्व सँभाले। वास्तवमें गीतामें भी उन्होंने विष्णु, इन्द्र, शंकर, कुबेर, अग्नि, वरुण, यम आदि अनेक देवताओंसे अपनेको अभिन्न कहा है (१० । २०–२४)। इससे स्पष्ट है कि सर्वोच्च देव और उसकी आराधनाका गूढ़ अर्थ कुछ और ही है, जिसकी खोज हमें यत्नपूर्वक करनी चाहिये।

परम देव निश्चय ही अन्य देवताओंसे पद और अधिकारमें बढ़कर हैं। उनका पारस्परिक सम्बन्ध वैसा ही है जैसा पूर्णका अपने खण्डोंसे अथवा प्रबन्ध-सञ्चालकका अपने अधीनस्थ विभागाध्यक्षोंसे होता है। अल्प देवताओंके अधिकार और क्षेत्र सीमित हैं। चूँकि वे विशेष गुणों या शक्तियोंके स्वामी हैं, उनकी आराधना उन्हीं चीजोंके लिये की जाती है और वही चीजें उनसे मिल सकती हैं। इसलिये उनकी उपासना एक तो सकाम, दूसरे अल्प फल देनेवाली होती है। परमशान्ति अथवा समग्र पूर्णताको केवल धन या विद्याके देवताकी पूजासे नहीं प्राप्त किया जा सकता।

स्वयं गीताने सर्वोच्च देवके विशिष्ट लक्षणोंको बिल्कुल स्पष्ट कर दिया है। उदाहरणार्थ वह कहती है—

यह सभी कुछ वासुदेव है। (७ । १९)

मेरे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। (७ । ७)

मै प्राणीमात्रका शाश्वत आदितत्त्व हूँ। (७ । १०)

मै समस्त प्राणियोंके हृदयमें स्थित आत्मा हूँ। मै ही सब प्राणियोंका आदि, मध्य और अन्त हूँ। (१० । २०)

जीवमात्रके शरीरमें रहनेवाली अग्नि बनकर और प्राणवायुसे संयुक्त होकर मैं ही चार प्रकारके आहार पचाता हूँ। (१५।१४)

अर्जुनने श्रीकृष्णके विश्वरूपके वर्णनमें इन्हीं बातोंकी पुष्टि की है—

प्रभो! मैं आपके शरीरमें सभी देवताओं और विभिन्न प्राणियोंके समूहको देखता हूँ। (११ । १५)

आप ही अनन्त स्वरूपोंमें सारे ब्रह्माण्डोंमें व्याप्त हैं। (११।३८)

आप सर्वत्र व्याप्त हैं, इसलिये आप ही सब कुछ हैं। (११।४०)

सर्वोच्च देव ही उच्चतम अव्यक्त हैं। जो अव्यक्त से इसलिये श्रेष्ठ हैं कि उनमें न केवल अव्यक्त ब्रह्म किंतु समस्त व्यक्त या प्रकट ब्रह्माण्डका भी समावेश है। (८। १८, २०) इसी तरह पुरुषोत्तममें पुरुष और प्रकृति दोनो निहित हैं। (१५। १६-१८) सर्वोच्च देव वही हैं, जिसमे समस्त प्राणियोका निवास है और जो सर्वत्र व्याप्त है(८। २२)। वह केवल आत्मा ही नहीं वरन् जड़-पदार्थ, विधि-विधान, ताप, प्रकाश, विद्युत्, प्राण और चेतना भी है। सब देवताओंमे एकमात्र उसीका सम्पूर्ण चराचर जगत्से पूर्ण तादात्म्य है। प्राणी-मात्रसे एक होकर वही उनकी आकाङ्क्षाओं, भावनाओ, सुख-दुःखका भागीदार बनता है।

मनुष्य जो कुछ भी अपने सहजीवियोके साथ करता है वह स्वयं परमदेवके साथ ही करता है। इसलिये सर्वोच्चकी उपासना केवल कर्मकाण्ड, जप, ध्यान और प्रार्थनातक ही सीमित नहीं रह सकती। उसमें लोक-हितमें गहरी सुरुचि, सब प्राणियोंके प्रति

श्रद्धा और उनकी सप्रेम तथा निःस्वार्थ सेवा भी अनिवार्यरूपसे शामिल की जानी चाहिये । पूजा और सेवाके योगसे ही परमपुरुषकी सच्ची उपासना बनती है और इसीसे मनुष्यकी आत्मोन्नति सुनिश्चित हो सकती है ।

सकाम भावसे की हुई सारी साधना छोटे देवताओंकी उपासना है । केवल निष्कामभावसे अर्थात् परार्थ की हुई उपासना और कर्म ही सर्वोच्च देवकी आराधना है । गीतामें श्रीकृष्णकी पूजा-अर्चनाकी बार-बार प्रेरणा इसी अर्थमें की गयी । प्राणीमात्रकी भलाईमें आनन्दित होना इस उपासनाका विशेष लक्षण है । (५ । २५,१२ । ४)इसीलिये श्रीकृष्णने बताया कि सब योगियोंमें श्रेष्ठ वह है जो दूसरोंके दुःख-सुखको अपना मानता है । (६ । ३२) सदाचारी भक्तोंमें सर्वोत्तम और प्रभुका परम प्रिय वह ज्ञानी है, जो सर्वत्र ज्ञानके ध्येय अथवा परमात्माहीको देखता है (७ । १७, १८, १३ । ११) । यह अनुभूति कि सब कुछ वासुदेव ही है, विरलोंको और वह भी अनेक जन्मोंके बाद ही प्राप्त होती है । (७ । १९)

उपासनाकी सर्वश्रेष्ठ पद्धति

प्रार्थना, जप, ध्यान, स्तुति तथा मूर्ति एव अन्य प्रकारके संकेतोंका पूजन ईश्वरोपासनाकी जानी-मानी पद्धतियाँ है । इनमेसे एक या कईको हम अपनी रुचि और सुविधाके अनुसार अपना सकते है । यहाँपर हम दो अन्य विधियोंकी चर्चा करेंगे । जिसकी शिक्षा हमारे धर्म-ग्रन्थोंमें दी गयी है और जो सतत या पूर्ण योगके लिये बड़ी उपयोगी है ।

एक प्रभु-स्मरण है। हर समय और जितनी बार हो सके उसको याद करो। अतीतकी कृपाओं और वर्तमानके प्रत्येक नये अनुग्रहके लिये उसको धन्यवाद दो। अपनी समस्याओंके हल करनेमें उससे सहायता और मार्ग-दर्शनकी याचना करो, कठिनाइयोंमें उससे धीरज और प्रोत्साहन प्राप्त करो। प्रलोभनोसे बचनेके लिये शक्ति और भूलचूकके लिये उससे क्षमा माँगो। गीतामें कहा है- "हर समय मेरा स्मरण करो और संघर्ष करते रहो।"

दूसरी विधि यह है कि मन-चक्षुसे प्रत्येक स्थल और व्यक्तिमें प्रभु-दर्शनका अभ्यास करो। अपने सम्पर्कमें आनेवाले प्रत्येक व्यक्तिमें उसको देखनेकी चेष्टा करो। ऐसा करना मनको प्रभुमें केन्द्रित करनेका उत्तम साधन है, जिसपर गीताने बहुत जोर दिया है—

"जो मुझको सर्वत्र देखता है और सबको मेरे भीतर देखता है, मैं उसकी और वह मेरी दृष्टिसे कभी ओझल नहीं होता। (६ । ३०) जो एकत्वकी भावना करके सब प्राणियोंमें विराजमान मुझ (परमेश्वर) को पूजता है, ऐसा योगी कैसे भी रहे, मुझमें ही वास करता है। (६ । ३१) वास्तवमें वही देखता है जो सभी नश्वर प्राणियोंमें अविनाशी महाप्रभुको देखता है। (१३ । २७) सबमें समानरूपसे प्रभुका वास देखकर वह आत्माका आत्माद्वारा हनन नहीं करता, जिससे वह परम गतिको प्राप्त कर लेता है। (१३ । २८) यह तो स्पष्ट ही है कि प्राणीमात्रमें प्रभु-दर्शन करना वास्तवमें

सभी योगोका योग है । इसमे ज्ञान, ध्यान, शक्ति और कर्म सभी समाविष्ट हो जाते है । इसमे मन, बुद्धि, दृष्टि, विचार, भावना, इच्छा, शक्ति और हाथ सभी पवित्र हो जाते हैं । यही नित्ययोग, सतत-योग या पूर्णयोग है ।"

आदिशंकराचार्यके अनुसार ध्यानका वास्तविक उद्देश्य भी यही है । अपनी पुस्तक अपरोक्षानुभूतिमें वे कहते हैं, "सामान्य दृष्टिको ज्ञानदृष्टिमे बदलकर विश्वको ब्रह्मरूपमे देखना चाहिये । यही सर्वोत्कृष्ट दृष्टि है, वह नही जो नाककी नोकपर केन्द्रित की जाती है । मन भटककर जहाँ भी जाय, वहीं ब्रह्मकी अनुभूति करनेमे मनको स्थिर करना सर्वोच्च कोटिकी धारणा है ।"

भागवतके अन्तमे उद्धवने श्रीकृष्णको बताया कि जन-साधारणके लिये राजयोग अत्यन्त कठिन है । उसमे हताश ही होना पडेगा । इसलिये उन्होने परमात्मातक पहुँचनेका सरल, सुगम मार्ग पूछा । श्रीकृष्णने उत्तर दिया कि "भगवत्-प्राप्तिका सरल और सहज उपाय प्रभुके लिये सारे काम करना और काम करते समय प्रभुको याद करते रहना चाहिये ।" उन्होंने अपनी समग्र शिक्षाका सारांश इन स्मरणीय शब्दोंमें बताया ।

सभी प्राणियोंमे मन, वचन और कर्मद्वारा (परमात्माको) ही देखना और उसीके अनुसार आचरण करना मेरे विचारसे सर्वोत्तम उपासनाकी विधि है ।

उत्कृष्टताका दिव्य सन्देश

हमारे शास्त्रोंकी एक बहुमूल्य शिक्षा, जिसे हम भूल गये हैं, यह है कि जीवनको तेजस्वी और कीर्तिमान बनाया जाय । वेदोंके ऋषि बारंबार महानता-प्राप्तिके लिये प्रार्थना करते थे । "ईश्वर मुझे तेजस्वी बना", "तेरे बनाये हुए सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, आकाश, समुद्र और स्वर्ग सदैव महानता-प्राप्तिमें मेरे सहायक सिद्ध हो ।"

गीतामें तो विभूतियोग नामक एक पूरा अध्याय ही है जिसमें श्रीकृष्णने हर क्षेत्रके सर्वोत्तमभूतकी प्रशंसा करनेके लिये अपनेको उससे एकरूप बताया है । "मैं अचल वस्तुओंमें हिमालय, नदियोंमें गङ्गा, वृक्षोंमें कल्पवृक्ष, गायोंमें कामधेनु, ऋषियोंमें व्यास, गायकोंमें चित्ररथ, सेनापतियोंमें स्कन्द, शासकोंमें यम, मुनियोंमें नारद, योद्धाओंमें राम और मनुष्योंमें राजा हूँ । मै महान्‌की महानता, विजेताकी विजय एवं सुशीलका शील हूँ। मैं सभी प्राणियोंमें जीवन तथा तपस्वियोंकी तपस्या हूँ ।"

विभूतियोगका मूल सिद्धान्त श्रीकृष्णने इन शब्दोंमें बताया है– "जिस किसी प्राणीमें भी तेजस्विता, अच्छाई, वैभव, शक्ति एव शौर्य दिखायी दे, उसे मेरी ही अनन्त विभूतिका छोटा-सा अंश समझना चाहिये ।"

प्रत्येक वर्गमें सर्वोत्तम व्यक्तिको आदर देकर श्रीकृष्णने मानव-मात्रको उत्कृष्टताका दिव्य पाठ पढाया है। गीता सभी साधकोंको स्वर्णिम कार्य और यशोपार्जन करनेकी प्रेरणा देती है। इस विषयमें कोई शंका न रह जाय इसलिये श्रीकृष्णने अर्जुनको अपना विराट् स्वरूप दिखाते हुए साफ-साफ कहा—"अतः यशस्वी बनो, अपने शत्रुओपर विजय प्राप्त करो और समृद्धिशाली राज्यका उपभोग करो।"

आधुनिक विचारकोंने भी अनुपम योग्यताकी प्राप्तिपर बहुत बल दिया है। इमर्सनका कहना है—'यदि कोई व्यक्ति अपने पड़ोसीकी अपेक्षा अधिक सुन्दर पुस्तक लिख सकता है, अधिक प्रभावशाली प्रवचन कर सकता है या अधिक बढ़िया चूहेदानी बना सकता है तो संसारके लोग पैदल चलकर उसके दरवाजेतक जानेके लिये रास्ता बना देंगे।"

इसी प्रकार स्वेटमार्डनने कहा है—"किसी कार्यको विशेष निपुणताके साथ सम्पन्न करनेमें एक अपूर्व सौन्दर्य है। ऐसा जान पड़ता है कि मनुष्यकी रचना ही विशिष्ट योग्यताकी प्राप्तिके लिये हुई है।"

मनोवैज्ञानिक डॉ० लिंक्स लिखते हैं—"एक प्रभावशाली व्यक्तिके लिये कई प्रकारकी योग्यताके साथ कुछ क्षेत्रोंमें अपेक्षाकृत और एक क्षेत्रमें स्पष्टरूपसे श्रेष्ठता भी आवश्यक है। मुख्य श्रेष्ठता रोजगारके क्षेत्रमें और दूसरी श्रेष्ठताएँ खेल-कूद, किसी मनपसंद काम या सामाजिक कलाओंमें हो सकती है। श्रेष्ठता प्राप्त करनेकी आदत ही भावी सफलताके लिये तैयारी है।"

कर्मयोग और विभूतियोग

गीताके अनुसार कार्यमें कुशलता योगकी एक परिभाषा है और श्रीकृष्णको वही भक्त प्रिय है जो दक्ष है। कार्यकुशलताके दो पक्ष हैं——आध्यात्मिक और लौकिक।

आध्यात्मिक निपुणताका सार-तत्त्व निःस्वार्थता अथवा परार्थ है। कामको भगवान्‌की पूजा या भेंट समझकर या सब प्राणियोंकी भलाईके लिये करना, अपने हितोंकी अपेक्षा उनके हितोंका अधिक ख्याल रखना जिनको हमारे कामसे लाभ पहुँचना है। हड़तालें, नियमानुसार या धीमे काम करना, कम-से-कम काम और अधिक-से-अधिक वेतनकी निरन्तर माँग उतनी ही अनैतिक एवं अधार्मिक है जितनी कि ग्राहक या श्रमिकवर्गका शोषण करके धनवान् बननेकी आदत।

लौकिक दृष्टिसे भी काम संतोषजनक ढंगसे किया जाना चाहिये। सबसे पहली आवश्यकता तो यह है कि काम साफ-सुथरा और शुद्ध हो और उसमें त्रुटियाँ न हों। दूसरे, शुद्धताके साथ-साथ काम तेजीसे भी किया जाना चाहिये। सामान्यतः जो कार्यकुशल है वह कामको तेजीसे करता है और काममें सुस्त होना अयोग्यताका ही द्योतक है।

दक्षताका एक लक्षण यह भी है कि श्रम, धन एवं वस्तुओंके उपयोगमें मितव्ययता बरती जाय। एक सुयोग्य पुरुष बिना थकान महसूस किये लंबे अर्सेतक काम कर सकता है। वह अपने समय, बल तथा अन्य साधनोंका पूरा-पूरा लाभ उठाता है। वह आसानीसे

दूसरोंका सहयोग प्राप्त कर लेता है और इस प्रकार अपनी शक्तियोंको बढ़ा लेता है।

कुशलताका सर्वोच्च अंश मौलिकता, अन्वेषण और आविष्कार है। जो सचमुच निपुण है वह लकीरका फकीर नहीं होता और न कामको पुराने ढर्रेपर ही चलाता रहता है। अपितु, वह काम करनेके नित नये, अच्छे और सरल तरीके खोजता है, नये पदार्थोंका निर्माण करता है और हमेशा उन्नति तथा सुधारके काममें लगा रहता है। वह दस वर्ष, बीस वर्ष, बल्कि पचास वर्ष आगेकी सोचता है, उसके लिये योजना बनाता है और अपनी संस्था तथा अपने समाजको पहलेकी अपेक्षा अधिक सुखी और समृद्ध छोड़ जाता है। काममें मौलिकता, सुधार और नवीनता लानेसे कर्मयोग विभूतियोग बन जाता है।

समस्त ऐश्वर्यके स्वामी योगेश्वर कृष्ण साधारण योग्यतासे संतुष्ट नहीं होते। वे अपने भक्तोंसे उच्च कोटिकी योग्यताकी अपेक्षा करते हैं। धन्य हैं वे लोग जो कर्मयोगका अनुसरण करते हैं और अपने श्रमसे समाजके ढाँचेको बनाये रखते है। परंतु उनसे भी अधिक मूल्यवान् वे थोड़े-से पुरुष होते हैं जो विभूतियोगका अनुसरण करते है, जो वीर, नेता या महामानव है, जो संसारके कल्याणमें महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं, जो मानव-जातिके सुख, ज्ञान तथा सम्पत्तिका विशेष रूपसे संवर्द्धन करते हैं।

शक्तियोंका विकास

योग्यताका विकास, जिसपर वेदो और गीताने बहुत जोर दिया है, विकासवादका मूल सिद्धान्त है। मनुष्य-जीवनका प्रारम्भ एक

बीजके रूपमें होता है, जिसमें अनेक प्रकारकी शक्तियाँ छिपी रहती है, वह शक्तियाँ व्यक्तिके बाहर आनी चाहिये और उनका सदुपयोग होना चाहिये। ऐसा करना व्यक्ति और समाज दोनोंके उत्कर्ष तथा सुखके लिये आवश्यक है।

स्वामी विवेकानन्दने लिखा है—"प्रत्येक आत्मामें अनेक दैवी शक्तियाँ छिपी रहती है। आन्तरिक एवं बाह्य प्रकृतिको वशमें करके छिपे हुए देवत्वको प्रत्यक्ष करना ही जीवनका उद्देश्य है।"

योग्यताके विकासकी सम्भावनाएँ प्रायः असीम हैं। बड़े-बडे विद्वान् भी यदि विनम्रता और सच्चे दिलसे प्रयत्न करें तो अपनी विद्वत्ता और सूझ-बूझको बढा सकते हैं। बौद्धिक विकासमें आयु भी बाधक नहीं। शारीरिक विकास तो अधेड़ावस्थामें रुक जाता है, पर बौद्धिक विकास वृद्धावस्थामें भी जारी रखा जा सकता है। मस्तिष्कको अन्ततक जागृत एवं विकासशील दशामें रखनेके दो उपाय हैं—एक तो उसको कठिन कामोंमें लगाना, दूसरे, कोई-न-कोई नई चीज निरन्तर सीखते रहना।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक विलियम जेम्स कहा करता था कि "सामान्य व्यक्ति अपनी मानसिक क्षमताका केवल दसवाँ भाग ही विकसित करता है।" उन्होंने लिखा है "जितना हमें चाहिये उसकी तुलनामें हम केवल आधा ही जाग्रत् है। हम अपने मानसिक एव शारीरिक साधनोका एक अल्पांश ही उपयोगमें लाते हैं। मोटे तौरपर यह कहा जा सकता है कि जन-साधारण अपनी सीमाओसे बहुत ही नीचे अपने जीवनको व्यतीत करता है। उसके अधिकारमें

भाँति-भाँतिकी शक्तियाँ रहती है, जिनका वह कभी प्रयोग ही नहीं करता।"

नोवेल पुरस्कारविजेता डॉ० अलक्सिस कैरलका कहना था कि "बूढे, जवान, विद्वान् तथा अनपढ सभीका यह परम कर्तव्य है कि अपनी मानसिक शक्तियोका यथासम्भव विकास करे। सभी अपनी सुषुप्त शक्तियोको जगा सकते है और यह क्रम बुढ़ापेमें भी चालू रखा जा सकता है। वृद्धावस्थामें, जब कि शरीरकी सहज क्रियाएँ मन्द पड़ जाती हैं, चेतना और भी गहरी, विस्तृत तथा स्वच्छ बन जाती है और बौद्धिक, नैतिक क्रियाएँ बरावर जारी रह सकती हैं।'

इस विषयमें अंग्रेजीकी एक मधुर कविता है, जिसका भाषान्तर इस प्रकार है—

पर्वतके उत्तुंग शिखर पर, यदि तरुवर नहीं बन सकते।
तो नीचे घाटीके भीतर, सुन्दरतम एक झाड़ बनो॥
गर झाडी बनना हो दुष्कर तो फिर कोमल घास बनो।
अपनी शीतल हरियालीसे, राजमार्ग सुखमय कर दो॥
राजमार्ग नहीं बन सकते तो पगडंडी ही बन जाओ।
सूर्य नही बन सकते हो यदि, तो तारा ही बन जाओ॥
आकार नहीं सेवासे ही' मानवको गौरव मिलता है।
तुम चाहे जो कुछ भी हो, उस क्षेत्रमें सबसे श्रेष्ठ बनो॥

श्रेष्ठताके प्रकार

चमत्कार दिखानेवाली असाधारण या अलौकिक शक्तियोसे हम बहुत प्रभावित होते हैं, यद्यपि उनसे बहुत थोडे-से लोगोंको ही लाभ

पहुँचता है । इसके विपरीत, हम उन सामान्य शक्तियोंकी ओर बहुत कम ध्यान देते हैं, जिनका विकास असाधारण दर्जेतक किया गया है और जो हमारे ज्ञान-भण्डारको विस्तृत करती हैं तथा मनुष्यमात्रके जीवनको अधिक सुलभ एवं सुखमय बनाती हैं । यह याद रखनेकी बात है कि जिन विभूतियोंसे श्रीकृष्णने अपनेको एकाकार बताया है, वे केवल धार्मिक या पारलौकिक नहीं, बल्कि संसारके सभी क्षेत्रोंमें होती हैं ।

भगवान्‌की दृष्टिमें सांसारिक उत्कृष्टताका मूल्य आध्यात्मिक उत्कृष्टतासे कम नहीं। ये दोनों ही प्रकारकी योग्यताएँ जीवन-निर्वाह तथा समाजकी सुव्यवस्थाके लिये आवश्यक हैं । सच तो यह है कि वेदान्तके अनुसार दोनो एक ही हैं । इसी विचारको भगिनी निवेदिताने अपनी पुस्तक 'रिलीजन एण्ड धर्म' में व्यक्त किया है—"जबतक हम जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें अपूर्व प्रतिभाके लोग पैदा नहीं कर लेते, तबतक हमें सन्तोष नहीं हो सकता । अद्वैतवादको गणित, यन्त्र-विज्ञान, कला और साहित्यमें उतनी ही अच्छी तरह प्रकट किया जा सकता है, जितना कि दर्शन या ध्यानमें, पर यह अधकचरे कामद्वारा कदापि नहीं दर्शाया जा सकता । सच्चा अद्वैती विश्वका स्वामी होता है । वह अपने प्रिय विषयके बारेमें बहुत कुछ नहीं, बल्कि जाननेयोग्य सभी कुछ जानता है । वह अपने कामको साधारण दक्षतासे नहीं, बल्कि यथासम्भव दक्षतासे करता है । मस्तिष्ककी उच्चतम उपलब्धियाँ एक साधना ही हैं ।

ह व्यक्ति तो ऋषि है जो किसी प्रकारके ज्ञानकी चरम सीमातक पहुँच गया है ।"

ऐसे ही विचार बेसिल किंगने अपनी पुस्तक 'दि कांक्वेस्ट ऑफ फेयर'में लिखे हैं—"सत्यकी सारी खोज ईश्वरहीकी खोज है, चाहे वह धर्मके क्षेत्रमे हो या विज्ञान, कला या दर्शनके क्षेत्रमे । जब ईसा-मसीह किसी अन्धेको नेत्र देते है या पीटर या जौन किसी लँगड़ेको चलनेकी शक्ति देते हैं तो हम उसमें ईश्वरका चमत्कार देखते हैं । किंतु हम ऐसा ही परमात्माका चमत्कार तब भी देखते है जब एक व्यक्ति हमें टेलीफोन देता है, दूसरा तार और तीसरा बेतारका टेलीग्राफ देता है । जहाँ कहीं भी चमत्कार है, वह ईश्वरहीका चमत्कार है और वह भगवत्प्राप्तिमें हमें सहायक हो सकता है ।"

यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिये कि शक्तिमें वृद्धिसे दैवी सम्पत्तिके गुणोमे वृद्धि हो जाय, यह आवश्यक नहीं । आध्यात्मिकताकी सच्ची कसौटी शक्ति नहीं, चाहे वह लौकिक या पारलौकिक हो, बल्कि मानवकी सेवा है । असुर और दानव ईश्वरको प्रिय नहीं होते, यद्यपि उनकी शक्तियाँ संतोंके समान, बल्कि कभी-कभी तो उनसे भी बढ़कर होती हैं । महात्मा गाँधीने सच ही कहा था कि मनुष्य ठीक उसी अनुपातमें महान् बनता है, जितनी भलाई वह दूसरोकी करता है ।

सर्वश्रेष्ठता कैसे प्राप्त की जाय!

सर्वश्रेष्ठताकी पहली शर्त है महत्त्वाकाङ्क्षा, अपने विषयके बारेमें सब कुछ जानने तथा अपने कामको सर्वोच्च ढंगसे करनेके

लिये प्रबल इच्छा। यह उत्कण्ठा तीव्र रुचिका रूप धारण कर लेती है, जिसके बलसे वैज्ञानिक एवं अन्वेषक अपने-अपने ध्येयकी प्राप्तिमें अपने तन, मन, धनको समर्पित कर देते हैं।

मनुष्यके जीवनमें छायी हुई एक गहरी दिलचस्पी उसके मस्तिष्कका ध्रुवीकरण कर देती है। इस प्रकार उसका मन एक चुम्बक बन जाता है और हर समय अपने संचित अनुभव एवं नये अनुभवोंमेंसे ऐसे विचारोंको खींचकर लाता रहता है जो लक्ष्यसे सम्बन्धित हैं या उसके लिये उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। गहरी दिलचस्पी मस्तिष्कको नई शक्ति देती है, सुषुप्त शक्तियोंको जगाती है और श्रेष्ठता, अन्वेषण एवं शोधकी कुंजी है।

कठोर परिश्रम श्रेष्ठताकी दूसरी शर्त है। जिज्ञासुको अपने कार्यसम्बन्धी ज्ञान और विशेष विधिमें पटु होना चाहिये। वास्तवमें एक सुदक्ष कार्यकर्ता जीवनभर उत्सुक शिक्षार्थी बना रहता है और नये विचारों तथा नये उपायोंको अपनानेमें सदा तत्पर रहता है चाहे वह कहीं भी मिले। वह हर कामको बड़े ध्यानसे, ठीक-ठीक और पूरी विश्वसनीयतासे करनेकी आदत डालता है। वह अपनी कृतिको कई बार दोहराता है, उसमें संशोधन और सुधार करता है और उपलब्ध समयके अंदर उसे बढ़िया-से-बढ़िया बनाकर ही अपने पाससे निकालता है।

गहरे अध्ययन और मनन तथा धैर्यपूर्वक प्रश्नोंका समाधान खोजनेके बाद ही नये विचारोंका उदय होता है। वैज्ञानिक आविष्कारोंके लिये एकके बाद दूसरे अनेक प्रयोग करने पड़ते हैं।

आविष्कारोंके जादूगर एडिसनने भाँति-भाँतिके रसायनिक पदार्थोंको लेकर कोई दस हजार परीक्षण किये। तब उसे अपनी बैटरीके लिये एक उपयुक्त जुटावका पता चला।

इसी प्रकार उत्तम लेखनके लिये विस्तृत ज्ञान ही काफी नहीं, बल्कि लिखने, दोहराने और फिर लिखनेका कठिन पुरुषार्थ भी आवश्यक है। टाल्स्टायने अपने विख्यात उपन्यास "वार एण्ड पीस" को सात बार लिखा। जीन हेनरी फेबरने अपनी अधिकांश पुस्तकें साठसे नब्बे वर्षकी आयुमें कठोर परिश्रम और बडे ध्यानसे तैयार की। 'डिक्लाइन एण्ड फौल ऑफ दि रोमन एम्पायर' नामक ग्रन्थके लिखनेमें लेखकने बीस वर्ष लगाये।

रेडियमकी खोज घोर दरिद्रताके बीच अथक परिश्रमकी वीर-गाथा है। टनों खनिजमेंसे जरा-सा रेडियम अलग करनेमें क्यूरी दम्पतिको चार वर्ष लगे। सारे दिन और महीनोंतक वह दोनों एक टूटे-फूटे सीलनभरे शेडमें काम करते रहे। यही उनकी प्रयोगशाला थी। इस समयका अधिकांश भाग श्रीमती क्यूरीने खडे-खड़े बिताया, जब कि वह एक विशाल कडाहमें उबलती हुई मिश्रण-को लोहेके डंडेसे चलाती रही, जिसकी लंबाई उनके कदके बराबर ही थी। शेडकी छत इतनी टूटी थी कि जब वर्षा होती तो ऊपरसे पनाले झरने लगते थे। पर उनके पास मरम्मत करानेको पैसे न थे। निस्संदेह उनकी मेहनत एक उच्च कोटिकी तपस्या थी।

सर्वोत्कृष्ट बननेका अर्थ है कार्यमें लगातार सुधार करना नवीनता लाना, समय एवं श्रम बचानेवाले तरीकोंको ढूँढ़ निकालना, कार्यको सुगम बनाना, बेहतर और सस्ती वस्तुएँ तैयार करना अनाजके एक दानेके बजाय अनेक दानोंका उत्पादन करना। दुनियामें ऐसी कोई चीज नहीं जिसे श्रेष्ठतर न बनाया जा सके ।

सर्वाङ्गीण योग्यताका आदर्श तो बहुत दुष्कर है । सारे विषयोंमें पारंगत कोई-कोई ही बन सकता है; किंतु एक छोटे-से क्षेत्रमें विशिष्टता तो प्रत्येक व्यक्ति प्राप्त कर सकता है । कार्यके जिस भागमें अपनी विशेष रुचि या योग्यता हो, उसमें प्रयास करके मनुष्य उच्चकोटिकी दक्षता प्राप्त कर सकता है । जब जीवनके एक भागमें श्रेष्ठता प्राप्त कर ली तो वह जीवनके दूसरे भागोंमें भी श्रेष्ठताको बढ़ावा देती है । मनुष्यका व्यवसाय चाहे कुछ भी हो, उसे सामान्य कार्यकर्ता नहीं बनना चाहिये, वरन् वहाँसे उठकर सर्वश्रेष्ठताके दर्जेमें पहुँचना चाहिये ।

अपील

हमारे देशमें मानव-सम्पत्ति तो उच्चकोटिकी है; किंतु दुर्भाग्यवश उसके विकासके लिये अवसर और प्रोत्साहन बहुत कम है । प्रचलित धर्मकी दृष्टिमें सांसारिक उद्यमोंमें योग्यताका कोई मूल्य ही नहीं । हर जगह जी-हुजूरी और खुशामदका बोलबाला है । स्वतन्त्र विचार और श्रेष्ठताको कहीं भी फूलने-फलनेका पूरा मौका

ीं मिलता। आजादीके बाद यदि इस विषयपर हमने उचित ान दिया होता तो अबतक समाजके प्रत्येक क्षेत्रमें अनेक महापुरुष पैदा हो जाते।

हमें वेदो और गीताके तत्त्वको फिरसे ग्रहण करना है। मे कर्म अथवा श्रमको ऊँचा उठाना है। हमें योग्यताको ोजकर निकालना और प्रोत्साहित करना है। हमें केवल महान् तो, योगियो और दार्शनिकोंको ही नहीं, वरन् जीवनके प्रत्येक त्रमे श्रेष्ठ व्यक्तियोंको उत्पन्न करना है। हमें सुविख्यात वैज्ञानिक, रदर्शी राजनीतिज्ञ, निःस्वार्थ एवं समर्पित शासक, शिक्षाविद्, चिकित्सक, वकील, इंजीनियर, अन्वेषक, खिलाड़ी, कलाकार, ाहित्यकार, उद्योगपति, प्रबन्धक, द्रष्टा, संगठनकर्ता एवं नेताओंकी ड़ी आवश्यकता है। कोई महापुरुष तबतक राष्ट्रके प्रति अपना र्तव्य पूर्ण नहीं कर सकता, जबतक वह कम-से-कम दस ऐसे ोग्य व्यक्ति नहीं तैयार कर देता, जो उसका स्थान ले सकें।

आइये, हम स्वामी विवेकानन्दजीके शब्दोंको याद करें—

"हममेसे प्रत्येकको इसी क्षण यह दृढ़ प्रतिज्ञा करनी चाहिये—'मै ईश्वरका दूत बनूँगा। मैं प्रकाशका स्तम्भ बनूँगा। नहीं, मैं एक देवता बनूँगा।"

उठो! जागो! मत रुको, जबतक कि ध्येयतक न पहुँच जाओ।

यज्ञ-सहकारिताका विधान

जब ब्रह्माण्डकी रचना हुई, ब्रह्म एकसे अनेक बन गया और पूर्णने असंख्य रूप धारण कर लिये जो सभी विभिन्न और विचित्र किंतु अपूर्ण थे। संसारमें सौन्दर्य और सुव्यवस्था सर्वत्र दिखायी देती है, तथापि अपूर्णता सृष्टिका अभिन्न गुण है। प्रत्येक वस्तु दूसरोंको पूरा करती है और दूसरोंद्वारा पूरा होती है।

केवल परमेश्वर ही स्वयंभू, परिपूर्ण और स्वावलम्बी है। एक स्तर नीचे उतरते ही पराधीनता दीखने लगती है। मनुष्यकी आत्मा भगवान्का शाश्वत अंश होते हुए भी बिना देहरूपी साथीके

कुछ नहीं कर सकती। जीवात्माका विकास जीवित देहके भीतर ही हो सकता है और जीवित देहका जन्म तथा पालनपोषण अनेक व्यक्तियों और पदार्थोंपर निर्भर करता है। निष्कर्ष यह निकला कि जीवात्मा बिना शरीर, समाज और संसारके कदापि प्रगति नहीं कर सकता।

भगवत्-प्राप्तिके लिये यह परमावश्यक है कि जनजीवन सुचारु ढंगसे चलता रहे, दैनिक आवश्यकताकी चीजें सबको सुलभ हों और परिवेशको स्वच्छ और स्वस्थ बनाये रखा जाय। गीताने इसे लोकसंग्रहकी संज्ञा दी है और इस हेतु किये गये प्रत्येक कार्यको यज्ञ बताया है।

यज्ञ ईश्वरीय विधान है

प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है कि अपने और समाजके जीवनको बनाये रखनेके लिये अपनी योग्यताके अनुसार भरसक प्रयत्न करे। यह दैवी विधान है जो धार्मिक, अधार्मिक, साधु और पापी सबपर समान रूपसे लागू होता है। कोई भी व्यक्ति या समाज इसकी अवहेलना करके न तो जीवित रह सकता है और न आध्यात्मिक बन सकता है। हमारे शास्त्रोंने इस योजनाको यज्ञका नाम दिया है। यज्ञका अर्थ है ईश्वरकी उपासना, स्वेच्छासे दिया गया दान, असली सम्पत्ति और श्रमका जन-साधारणके लिये उपयोग तथा समाजके हितके लिये किया गया कोई भी काम, विशेषकर सामूहिक या संगठित प्रयास।

जगत्का सृजन और पालन करते हुए परमेश्वर स्वयं एक महान् यज्ञमें संलग्न है। इस यज्ञमें आहुति देना प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है। सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, पर्वत, वायु, सरिता, सागर, मेघ और वृक्ष-जैसे जड़ पदार्थ अपने सहज स्वभावसे दूसरोंकी सेवामें लगे हैं और परमात्माके यज्ञमें योगदान करते हैं। मनुष्यमात्रको अपनी इच्छासे और सोच-विचारकर ऐसा ही करना चाहिये।

"गीताने यज्ञपर बहुत जोर दिया है। श्रीकृष्ण कहते हैं—यज्ञके साथ-साथ सृष्टिकी रचना करके ब्रह्माने कहा—'इससे तुम्हारी वृद्धि होगी। तुम्हारी इच्छाओंकी पूर्तिके लिये यह कामधेनु होगी। इससे देवताओंका पोषण करो और वह देवता प्रसन्न होकर तुम्हारा पोषण करेंगे। इस प्रकार एक-दूसरेको उन्नत करते हुए तुम्हारा परम कल्याण होगा। यज्ञद्वारा सेवित देवता तुम्हें बिना माँगे ही सुख प्रदान करेंगे। वह चोर है जो उनकी दी हुई वस्तुओंका भोग तो करता है, पर बदलेमे उनको कुछ भी नहीं देता। जो यज्ञसे शेष बचे हुए अन्नको खाते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। पर वे पापी जो केवल अपने ही लिये भोजन बनाते हैं वे वास्तवमें पाप ही खाते है। (३।१०-१३) "पृथ्वीपर इस प्रकार घूमते हुए संसार-चक्रका जो पालन नहीं करता, जो पापमय जीवन व्यतीत करता है और इन्द्रिय-सुखको ही सब कुछ मानता है, उसका जीवन व्यर्थ है।" (३।१६) "जो यज्ञ नहीं करता उसके लिये यह

लोक सुखमय नहीं है, दूसरा लोक तो सुखमय हो ही कैसे सकता है ?" (८ । ३१)

अपनी सर्वश्रेष्ठ चीजका जनकल्याणके लिये बलिदान करना, यह कर्तव्य सृष्टि-रचनाके समय ही मानवमात्रके लिये निर्धारित कर दिया गया था, उसे यह वचन भी दिया गया था कि इस धर्मका पालन करनेसे उसे सुख मिलेगा, इसका विकास होगा और वह पूर्णताको प्राप्त करेगा । अपने ज्ञान, सम्पत्ति और परिश्रमका सबकी भलाईके लिये जितना भी उपयोग कर सके कीजिये । जो दूसरोंको सुख देनेमें मग्न रहता है वह स्वयं भी सुखी रहता है । अपनेको और दूसरोंको सुखी बनानेका यही सर्वोच्च उपाय है ।

वेदोंने भी यज्ञका महत्त्व गाया है, 'यज्ञ ही सबको खिलाता है । यज्ञ ही उन्नति और सौभाग्य है । बलिदान ही महत्ता है । यज्ञ ही आत्माका प्रकाश है । बलिदान आनन्द है । संत लोग देवोंकी उपासना यज्ञद्वारा करते हैं । यज्ञका झंडा सदा ऊँचा रखो ।'

श्रीअरविन्दका कहना है—'सृष्टि एक है; उसके पृथक्-पृथक् खण्ड परस्पर निर्भरताके सिद्धान्तपर ही आधारित हो सकते हैं जिसमें प्रत्येक दूसरोंकी सहायतासे बढ़ता है और सबके लिये जीता है । जहाँ आत्म-बलिदान स्वेच्छासे नहीं किया जाता, वहाँ प्रकृति बलपूर्वक उसे करा लेती है और अपने नियमकी तुष्टि कर लेती है । पारस्परिक लेन-देन जीवनका अटल नियम है, जिसके बगैर वह एक क्षण भी नहीं टिक सकता ।

सर्वव्यापी ब्रह्म यज्ञमें सदैव विद्यमान रहता है। (३।१५)। यज्ञके हर काममें मनुष्य अपने रचयितासे मिलता है। प्रार्थना, जप और ध्यानद्वारा तो सम्पर्क उस परमात्मासे होता है जो सुदूर स्वर्ग या क्षीरसागरमें रहता है। प्यारपूर्ण और निःस्वार्थ सेवाद्वारा उस परम पुरुषसे मिलन होता है, जो घट-घट वासी है, जो पशु, पक्षी और मनुष्यके रूपमें पृथ्वीपर विचरता है और जो प्राणीमात्रके सुख-दुःखको भोगता है।

यज्ञ करना सभीका अनिवार्य कर्तव्य है। भक्त, ज्ञानी और संन्यासी भी इससे मुक्त नहीं। गीतामें स्पष्ट रूपसे आदेश है कि बुद्धिमान्‌को अपनी सात्त्विक या पवित्र स्थिति बनाये रखनेके लिये निरन्तर और निःस्वार्थभावसे यज्ञ, तप और दान करते ही रहना चाहिये (१८।५, ६)।

सहयोगद्वारा यज्ञ

एक व्यक्ति अकेले भी बहुत कुछ कर सकता है, पर उसकी शक्ति सीमित होती है। परन्तु दूसरोंका सहयोग लेकर वह अपनी शक्तियोंमें अपार वृद्धि कर सकता है। विभिन्न योग्यता और हुनर-वाले कई लोग मिल-जुलकर संगठनके रूपमें जितना काम कर सकते हैं उतना वह अलग-अलग रहकर नहीं कर सकते।

स्वामी रामतीर्थने यज्ञकी बड़ी मार्मिक व्याख्या की है। वे कहते हैं। "आदित्य (अर्थात् सूर्य भगवान्, नेत्रोंके देवता) को अर्पण करनेका अर्थ यह संकल्प है कि मेरे, अशुभ आचरणके कारण किन्हीं नेत्रोंको भी कष्ट न पहुँचे।

"इन्द्र (जो हाथोंके देवता हैं) को अर्पण करनेका अर्थ हुआ देशमें सारे हाथोंकी भलाईके लिये काम करना, काम चाहनेवाले करोड़ों निर्धन तथा बेकार हाथोंको रोजगार देना या दिलानेकी व्यवस्था करना। इन्द्रका पेट भर जानेसे सारे देशमें सुख-समृद्धि आ जायगी। जब सभी हाथ काममें लग जायेंगे तो दरिद्रता कहाँ रहेगी?

"सबका हित करनेके लिये बहुत-से हाथोंको मिलाना इन्द्र-यज्ञ है। बहुत-से मस्तकोंको मिलाना बृहस्पति यज्ञ है। बहुत-से हृदयोंको मिलाना हृदयके देवता-चन्द्रका यज्ञ है। सारांश यह है कि देवताओंके लिये यज्ञ करनेका अभिप्राय है अपने हाथ सारे राष्ट्रके हाथोंको, अपनी आँखें समस्त राष्ट्रकी आँखोंको, अपनी बुद्धि सारे देशवासियोंकी बुद्धिको समर्पण करना, अपने निजी हितोंको सारे देशके हितोंमें विलीन करना, सबके साथ एकात्मभावका अनुभव करना और सबकी भलाईमें ही अपनी भलाई देखना।"

रवीन्द्रनाथ ठाकुरने कहा था—"मनुष्य जब अपने साथियोंसे पूरी तरह नहीं मिल पाता तो वह अपना वास्तविक स्तर खो बैठता है। पूर्ण पुरुष वही है जिसमें इस तरह मिलनेकी सामर्थ्य हो। अकेला व्यक्ति एक विभाजित प्राणी है। मिल-जुलकर ही मनुष्यने वह सब हासिल किया है जिसका जीवनमें मूल्य है—ज्ञान, निष्ठा, शक्ति, सम्पत्ति। सभ्यता क्या है? मेल-जोलकी इस अवस्थाका ही नाम है जिसमें हर व्यक्तिकी शक्ति समूहकी शक्तिमें वृद्धि करती है और समूहकी शक्ति हर व्यक्तिको शक्ति देती है।"

समाजके उत्थान ही नहीं वरन् अस्तित्वके लिये भी परमावश्यक है कि उसके सदस्योंके बीच परस्पर सहायता और सहयोग हो। इसी बातको समझाते हुए प्रसिद्ध समाजशास्त्री सी० ए० सौरोकिनने लिखा है—"केवल अहवादी सदस्योंद्वारा किसी शान्तिमय या प्रगतिशील समाजका निर्माण नहीं हो सकता। परस्पर सहानुभूति और सहयोगके अभावमें वे लोग सदा आपसी झगड़ोंमें फँसे रहेंगे और काम कुछ भी न कर सकेंगे।"

भगवान् बुद्धका कहना था—"तेरा भोजन, वस्त्र, घरका सुख, तेरी दुःखसे सुरक्षा, सुखका भोग, दूसरोंकी सहायतापर निर्भर है और समाजके घरोंमें ही मिल सकता है। मानवमात्रसे प्रेम करना तेरा कर्तव्य है; क्योंकि उनकी मैत्रीहीसे तेरा हित हो सकता है।"

मारकस औरेलियसने लिखा है—"हम सहयोगके लिये पैदा हुए हैं, जैसे हमारे शरीरमें हाथ, पैर, पलके और जबड़े आपसमें सहयोग करके अपना काम करते है।"

एल्फ्रेड, एडलर, यशस्वी मनोवैज्ञानिकके कथनानुसार "पुण्यका तात्पर्य यही है कि मनुष्य अपना काम ठीकसे करता है और पापका अर्थ यही है कि वह सहयोगमें बाधा डालता है। जीवनकी सभी समस्याएँ सहयोगके लिये योग्यता और तैयारीकी माँग करती है।"

मानव-कल्याणके लिये सहयोगकी महत्तापर वेदोंने भी बारंबार बल दिया है—"एक होकर रहो।" "साथ-साथ

चलो, एक होकर बोलो।" "एकता रखो, मेलसे बोलो, एकताका अनुभव करो।" "तुम्हारी प्रार्थना समान हो, तुम्हारी गोष्ठीका उद्देश्य एक हो।" "तुम्हारा संकल्प एक हो, तुम्हारे दिलोंमें मेल हो, ध्येय समान हो और आपसमें पूरी एकता रहे।"

सहयोगके प्रकार

सहयोग दो प्रकारका होता है। पहलेमे बहुत-से लोग मिल-कर एक ही काम करते है, जैसे लकड़ीका कुन्दा उठाना, जमीन खोदना, सड़क बनाना। यह सहयोगका प्रारम्भिक स्तर है। काम करनेवालोकी संख्या वृद्धिमे करके इस सहयोगकी शक्तिको बढ़ाया जा सकता है।

ऊँचे स्तरका सहयोग वह है जहाँ बहुत-से लोग साथ-साथ काम करते हैं, पर उनकी बुद्धि, कौशल और प्रकृति अलग-अलग होती है। उनका काम अलग-अलग, पर उद्देश्य एक होता है। ऐसे सहयोगके लिये कार्य-विभाजन, अपने-अपने काममें निपुणता और संगठन आवश्यक होते है। ऐसे यज्ञकी बड़ी सुन्दर मिसाल हमारे शरीरमें पायी जाती है। सब अङ्ग अपना अलग-अलग काम करते हैं; पर एक दूसरेकी सहायता करके शरीरको जीवित, स्वस्थ और सुखी रखनेके लिये प्रयत्नशील रहते है। कोई भी अङ्ग अपने लिये जीवित नही रहता और न दूसरे अङ्गोको नुकसान पहुँचाकर अपनी उन्नति करना चाहता है। सभी अङ्ग पूर्ण एकताकी भावना लेकर अपना-अपना काम सारे शरीरकी भलाईके लिये करते है।

समुद्र-मन्थनकी कथा सहयोगका पाठ सिखाती है। देव और असुर, जिनकी प्रकृति एक-दूसरेसे सर्वथा विपरीत थी, एक जुट होकर समुद्रको मथने लगे। उनके कठिन परिश्रम और सहयोगके फलस्वरूप उन्होंने भाँति-भाँतिके बहुमूल्य पदार्थोंको यहाँ तक कि अमृत भी प्राप्त कर लिया। इस उपाख्यानसे यह शिक्षा मिलती है कि अथक पुरुषार्थ और सहयोगसे जीवनमें सब कुछ मिल सकता है।

सहयोगमें बल तभी आता है जब हाथों और मस्तिष्कोंके साथ दिल भी मिला दिये जाते हैं। अपने काम और अपने सहयोगियोंके प्रति प्रेम ही निष्ठावान सेवकके लिये प्रेरणा देता है। सहयोगके लिये एक और चीज चाहिये—टीम या टोलीकी भावना। खिलाड़ी अपने लिये नहीं, अपनी टीमके लिये खेलता है। टीमकी विजय ही उसकी विजय है, टीमका यश उसका यश है। टोली या समूहके स्वार्थमें ही उसका स्वार्थ भी निहित है। राष्ट्र और समाजके हित पहले आते हैं, उसके बाद समूह या संगठनके, और उसके भी बाद अपने निजी हित। जिस संगठनके नेता और सदस्य आपाधापीमें लगे हों वह पनप नहीं सकता।

पृथाकाङ्क्षा, धूर्तता, अहङ्कार, स्वार्थपरता, क्रूरता तथा अन्य आसुरी गुण सामूहिक प्रयासकी जड़ काट डालते हैं। दैवी गुण जैसे सत्यप्रियता, ईमानदारी, शिष्टाचार, विनम्रता, सहयोगकी सफलताके लिये आवश्यक हैं। सच तो यह है कि यह गुण दूसरे

लोगोके साथ विचारो और हितोके संघर्षके बीच काम करके ही प्राप्त किये जा सकते हैं।

संयुक्त प्रयासके फलस्वरूप गुट बन जाता है। दुर्भाग्यवश नया गुट बनते ही उसमे गुटबन्दीका घुन लग जाता है। और वह दल या तो अपने लिये विशेष अधिकारो और सुविधाओंकी माँग करने लगता है या अन्य वर्गोसे संघर्ष छेड़ देता है। नये धर्मों और सम्प्रदायोंका यही इतिहास रहा है। वह अपने अनुयायियोंको तो एक सूत्रमें बाँधते है पर दूसरे धर्मों तथा सम्प्रदायोंके प्रति घृणा और वैरभाव फैलाते हैं। इस प्रकार सहयोग समाजके लिये आशीर्वाद न रहकर अभिशाप बन जाता है।

सर्वोच्च प्रकारका यज्ञ लोगोंके गुण, स्वभाव और रुचिमें विभिन्नतासे घबराता नहीं वरन् उसका पूरा लाभ उठाता है। इसमें नेता और अनुयायी, विचारक और वक्ता, बहिर्मुखी तथा अन्तर्मुखी, श्रमिक और पूँजीपति, साधु और गृहस्थ, सब अपने-अपने ढगसे, लेकिन मिल-जुलकर और सभीकी भलाईके लिये प्रयास करते है।

सहयोग और विज्ञान

एक समय वैज्ञानिकोको विश्वास था कि प्रकृतिके दाँत और नाखून खूनसे लाल हैं और सभ्यताकी प्रगति प्रेम तथा सहयोगसे न होकर सतत संघर्षसे होती है, जिसमे अशक्त और अविकसित लोग बलवान्, मक्कार और क्रूर लोगो द्वारा मिटा दिये जाते है। इस उजड्डताके सिद्धान्तने वास्तवमें मानव-जातिको बहुत क्षति पहुँचायी है।

अब वैज्ञानिकोंको ठीक बातका पता लग गया है। वे जान गये हैं कि स्पर्धा और संघर्ष कुछ हदतक तो जरूरी और उपयोगी हैं। पर यह निम्न कोटिका विधान है। मानवविकासके लिये प्रेम, सहयोग और परोपकार ही उच्चतम नियम है और यही आध्यात्मिकता-की कुंजी है।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक आयन्स्टाइनने लिखा है—'प्राय: हमारे सभी काम और अभिलाषाएँ दूसरे जीवोंके अस्तित्वसे जुड़ी हुई हैं। हम दूसरोंका उत्पन्न किया हुआ अन्न खाते हैं। दूसरोंके तैयार किये हुए कपड़े पहनते हैं और दूसरोंके बनाये हुए मकानोंमें रहते हैं। हमारे ज्ञान तथा विश्वासोंका अधिकतम भाग दूसरोंने, दूसरोंकी रची हुई भाषामें हमको दिया है। किसी समुदायमें मनुष्यका मूल्य इस बातपर निर्भर करता है कि उसकी भावनाएँ, विचार और कार्य उसके साथियोंके लिये कितने कल्याणकारी हैं। इस दिशामें उसके व्यवहारके अनुसार ही हम उसे भला या बुरा कहते हैं।"

सी० जे० हेरिक अपनी पुस्तक 'मानव-प्रकृतिका विकास' में लिखते हैं—"मानव समाजमें, जैसा कि वह अब संगठित है, जंगलका नियम-पकड़ो और मारो—कुंठित हो गया है।—इस सत्यको हम जितनी जल्दी समझ ले उतना ही हमारे लिये अच्छा होगा। नैतिक मान्यताओंके अतिरिक्त केवल जीवविज्ञानकी दृष्टिसे भी परहित करनेवाला व्यवहार ही सांस्कृतिक विकासके सर्वोच्च स्तरका द्योतक है। यह मूल बात है और केवल इसीसे संसारके राष्ट्रोंको आपसी तनाव-खिंचावके संकटसे बचाया जा सकता है।

इसी प्रकार प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक एल्फेड एडलर कहते हैं— "मनुष्य सहयोग-कला सीख जानेके कारण ही श्रम-विभाजनकी महत्त्वपूर्ण खोज कर सके। व्यवसायसम्बन्धी समस्याका समाधान केवल इसीमें है कि मनुष्य मेहनत करे, सहयोग करे और समाज-कल्याणके कार्योंमें योगदान दे। मनुष्यकी अन्तःप्रेरणा तो सदा यह कहती रही, अब लोग वैज्ञानिक दृष्टिसे भी इसकी आवश्यकताको समझ गये हैं। मानव-जाति उन्हीं व्यक्तियोंको विभूति (जीनियस) कहती है, जिन्होंने समाजकी बड़ी-बड़ी सेवाएँ की हैं।"

विज्ञानके इतिहासमे असम्भवको सम्भव और कठिनको सरल बनानेके उदाहरण भरे पड़े हैं। उसने किसी समय अतिमानवीय समझे जानेवाले कितने ही चमत्कारोंको जनसाधारणके लिये सुलभ कर दिया है। ऐसा लगता है कि उसे इच्छाओंको पूरा करनेवाली कुंजी मिल गयी है। वह कुंजी क्या है? विज्ञानकी अद्भुत सफलता-के कई रहस्य हैं, किंतु मूलभूत और महत्त्वपूर्ण रहस्य है विभिन्न योग्यताओंवाले असंख्य लोगोंका विश्वव्यापी सहयोग। जाति, रंग, भाषा, धर्म और राष्ट्रीयतामे विभिन्नता होते हुए भी सभी वैज्ञानिक प्रकृतिके रहस्योंको खोजने, ज्ञानका विस्तार करने और मानव-जीवन-को सुखी बनानेके लिये साथ-साथ काम कर रहे हैं।

विज्ञानकी सबसे बड़ी उपलब्धि चन्द्रमामें मनुष्यके उतर जानेकी है। यह सहयोगका बहुत बड़ा चमत्कार था, जिसमें चार लाख वैज्ञानिक इन्जीनियर, विशेषज्ञ और मजदूर बरसोंतक लगे रहे और मनुष्य-जातिके सारे पूर्वार्जित ज्ञानका उपयोग किया गया।

विज्ञान पुकार-पुकार कर कह रहा है कि "हमारी सारी समस्याओंका हल सहयोग ही है। इसीके द्वारा अच्छा समाज और सुन्दर संसार बन सकता है। विभिन्न क्षेत्रोंमें विशेषकर धर्मोंके बीच सहयोग मानव-समाजकी सबसे बड़ी आवश्यकता है।

एक अपील

हमारे देशमें सहयोगसे काम करनेकी भावनाका अभाव है। अच्छे पढ़े-लिखे लोग भी साथ मिलकर काम नहीं कर सकते। स्वयंसेवी संगठनोंकी तो बात ही क्या, कारखानो, निगमो और दफ्तरोमे भी सहकारी प्रयासकी कोई स्वस्थ या सर्वमान्य परम्परा नहीं। दिलसे सहयोग तभी हो सकता है जब लोगोको पूरा विश्वास हो जाय कि वह किसी व्यक्तिके निजी स्वार्थके लिये नहीं बल्कि सबकी भलाईके लिये काम कर रहे हैं। परंतु हमारे देशमें तो अधिकांश लोग अपने-अपने अहंकार स्वार्थ और लोभमें इतने डूबे हुए हैं कि उन्हे अपनेसे बडी कोई चीज ही नहीं दिखायी देती जो उनसे सेवा करानेके योग्य हो। हम दूसरोंके हाथ-पैरसे तो काम लेना चाहते है; पर उनके मस्तिष्क, विचारो और सुझावोका हमारे लिये कोई मूल्य नहीं। फलस्वरूप हमारे देशमें जो ज्ञान और अनुभव उपलब्ध है उसके अल्पांशका ही लाभ हमलोग उठाते है।

घरमें, स्कूलमें, खेतमे, कारखानेमें, दफ्तरमें, जहॉ भी बहुत-से मनुष्य मिल-जुलकर एक साथ काम करते है, वहॉ यज्ञ होता है, वहॉं

कृष्ण भगवान् स्वयं विराजमान रहते हैं और प्रत्येक कार्यमें दिलचस्पी लेते हैं। सार्वजनिक सेवाका हर काम यज्ञ है, परंतु वह सात्त्विक अथवा ऊपर उठानेवाला तभी बनता है, जब वह समर्पणभावसे भगवान्की भेंट मानकर और अपने साथियोंकी भलाईके लिये किया जाय।

आइये, शास्त्रोंके इस मूलपाठको हम सब फिरसे सीखें। अपने देशको सशक्त, समृद्धशाली और सुखी बनानेका भरसक प्रयत्न करें। आइये, गरीबी बेरोजगारी भ्रष्टाचार, बाढ़-सूखा, निरक्षरता, मूल्यवृद्धि-जैसी अनेक समस्याओंको सुलझानेके लिये हम अपनेको समर्पित करें। यह समस्याएँ जटिल अवश्य हैं, किंतु हमारे सामूहिक ज्ञान और पुरुषार्थके आगे इन्हें झुकना ही पड़ेगा।

हमारे महात्मा और धर्मात्मा लोगोंको चाहिये कि यज्ञके बहुमूल्य पाठको व्यवहारमें लायें और जनताको सिखाएँ। उन्हें धर्मको पुनः स्थापित करने और प्रजाके जीवन-स्तरको ऊँचा करनेके लिये प्रयत्न करना चाहिये। अपने देश और देशवासियोंको सारे संसारके लिये आदर्श बनाना चाहिये। भगवान्ने यह काम उन्हींको सौंपा है और श्रीकृष्णको प्रसन्न करनेका इससे अच्छा और कोई तरीका नहीं कि वे इस कामको संगठित उद्योगसे और पूरा मन लगाकर सम्पन्न करें।



प्रकाशमय ज्ञानदीप

मनुष्य शरीरसे बहुत दुर्बल है किंतु बुद्धिके रूपमें उसे ऐसी अद्भुत क्षमता मिली हुई है जिससे वह प्रकृतिके रहस्योंका उद्‌घाटन कर लेता है और उसकी शक्तियोंको वशमें कर लेता है। बीमारी और दर्दपर विजय प्राप्त कर लेता है एवं ध्वनि, पदार्थों और मनुष्योंको तीव्र गतिसे दूर-दूरतक ले जा सकता है।

बुद्धि ही शरीरका शासक है। जब शासकमें विकार आ जाता है तब शारीरिक क्रियाएँ बिगड़ जाती हैं और जीवन दुःखमय हो जाता है।

बुद्धिमें भाँति-भाँतिकी विलक्षण शक्तियाँ सुषुप्त रहती हैं, जिन्हें विकसित और शिक्षित किया जा सकता और जिनके द्वारा ज्ञानका उपार्जन, संचयतथा विस्तार किया जा सकता है। ज्ञानचक्षु उन चीजोंको देख सकते हैं जो आँखोंसे अदृश्य हैं या भविष्यमें आनेवाली हैं। बुद्धिद्वारा मानव स्वप्न देख सकता है और उन्हें सत्य बना सकता है।

*

एक ओर बुद्धिसे मनुष्यको बड़ी-बड़ी शक्तियाँ मिलती हैं तो दूसरी ओर उसकी सारी जिम्मेदारियाँ भी बुद्धिहीके कारण है। बुद्धि-से ही इन जिम्मेदारियोंको निभाया और समझा जा सकता है। बुद्धिसे ही मनुष्य और पशुमें भेद होता है।

जीवनका सारथी

हमारे शास्त्रोंने बुद्धिकी महत्ताको समझकर उसे जीवनका सारथी बताया है। जीवात्मा शरीरको जीवित अवश्य रखता है, किंतु अकेले कुछ नहीं कर सकता। जीवनका विकास बुद्धिकी सहायतासे ही किया जा सकता है।

विख्यात गायत्री-मन्त्रके अतिरिक्त वेदोंमें अनेक स्थानोपर बुद्धि और ज्ञानकी महिमा गायी गयी है। 'हम पूर्ण ज्ञान प्राप्त करें।' 'हम कुशाग्र बुद्धि चाहते हैं।' 'हे महान् बननेके इच्छुक! तू ज्ञान उपार्जन कर।' 'मेरी बुद्धिको सशक्त करो, उसकी वृद्धि करो।' 'तुम हमें बौद्धिक बल और ज्ञान प्रदान करो।' 'हे दयालु परमेश्वर! हमें सम्पूर्ण बुद्धि और ज्ञानका वरदान दो।'

गीताने भी बुद्धिपर बहुत जोर दिया है। "मैं बुद्धिमानोंकी बुद्धि और तेजस्वियोंका तेज हूँ (७।१०)।" "भूत-प्राणियोंमें ज्ञानशक्ति मैं हूँ (१०।२२)।" "मैं स्त्री-गुणोंमें स्मृति और मेधा हूँ (१०।३४)।" गीताकी सारी शिक्षा ही बड़े ऊँचे बौद्धिक स्तरपर है और तर्कके प्रयोगपर बड़ा जोर देती है। श्रीकृष्णने तो गीताके आरम्भमें ही बुद्धियोगका उपदेश (२।३९) और बुद्धि-का आश्रय लेनेका अनुरोध किया है (२।४९)। अपना उपदेश

समाप्त करते हुए श्रीकृष्णने फिर बुद्धियोगका सहारा लेनेका आग्रह किया है (१८ । ५७)। अन्तमे, अर्जुनपर अपने विचार लादनेके बजाय वे कहते हैं, "इस रहस्यमय ज्ञानको अच्छी तरह विचारकर जैसी तेरी इच्छा हो वैसा ही कर" (१८ । ६३)।

विशेषकर योगको कार्य-कौशल बताकर तो गीताने मेधा और दक्षताको योगशिरोमणि ही बना दिया है। बुद्धियोग सभी योगोंका प्राण है। कोई कार्य, चाहे वह कितना भी पुनीत क्यों न हो, यदि वह बुद्धिहीन, बुद्धिके विपरीत या अनावश्यक है एवं कुसमयमें किया जाता है, तो वह न तो योग बन सकता है और न भगवान्‌के पास पहुँचा सकता है। उदाहरणार्थ, जहाँ गीता या भागवतपर प्रवचन हो रहा है, वहाँ कोई भक्त समाधि लगाकर बैठ जाय या कीर्तन करने लगे तो क्या वह भगवान्‌को प्रिय लगेगा?

यह उदाहरण शायद बच्चोंकी-सी बात समझी जाय, पर क्या हमारे बहुत-से धार्मिक लोग ऐसे ही कार्योंमें संलग्न नहीं हैं जब कि देशको बड़ी आवश्यकता एक महायज्ञ की है, जिसमें सभी भले लोग मिल-जुलकर गरीबी, बेरोजगारी, आलस्य, अराजकता, बीमारी, दंभ, लोभ और भ्रष्टाचारको दूर करनेका सामूहिक प्रयास करें?

यह आम धारणा है कि शरीरका अङ्ग होनेके कारण बुद्धि घृणित और आध्यात्मिक विकासमे बाधक है। किन्तु हमारे

शास्त्रोंने सुनिश्चित कर दिया है कि बुद्धिका विकास और प्रयोग हमारा सबसे प्रमुख धार्मिक कर्तव्य है।

अधिकांश धर्मोंका एक संस्थापक रहा है। उसके अनुपम व्यक्तित्व, उपदेशों और कृतियोंको केन्द्र बनाकर ही इन धर्मोंका प्रचार किया गया। यदि संस्थापकका प्रभुत्व या महिमा किसी तरह भी डगमगा जाय तो उस धर्मका सारा ढाँचा ही खतरेमें पड़ जाय। इसलिये ऐसे सारे धर्मोंको विवश होकर अपने संस्थापककी जीवनचर्या तथा उपदेशोंको बुद्धि और तर्कसे परे तथा उनमें श्रद्धा-विश्वासको भगवत्प्राप्ति एवं मोक्षका एकमात्र साधन बताना ही पड़ता है। इसीलिये वे हर प्रकारकी शंका, प्रश्न और नये विचारपर कड़ा प्रतिबन्ध लगा देते हैं।

हिन्दू-धर्मका इतिहास इससे बिलकुल भिन्न है। इसका कोई संस्थापक नहीं। वेदों और उपनिषदोंमें उस ज्ञानका संकलन है, जिसे समय-समयपर अनेक ऋषियोंने खोज निकाला, जिनमेंसे अधिकांशके तो अब नाम भी ज्ञात नहीं।

उनका खोजा हुआ ज्ञान शताब्दियोंके महान् चिन्तन, सूक्ष्म अवलोकन और विस्तृत अन्वेषणका सामूहिक परिणाम है। उनके द्वारा सत्यकी खोज आधुनिक विज्ञानके ढंगसे, बिना डर और पूर्वाग्रहके की गयी थी। चित्ताकर्षक विचारोंके मोहमें न फँसकर वे उन्हें कड़ी-से-कड़ी कसौटीपर कसकर ही किसी दृढ़ निश्चयपर पहुँचते थे। 'नेति, नेति' यह नहीं, यह नहीं, उनका आदर्श वाक्य था और उनकी सतत प्रार्थना थी—'मुझे

असत्यसे सत्यकी ओर, अन्धकारसे प्रकाशकी ओर, मृत्युसे अमरत्व-की ओर ले चलो।' उनके लिये ज्ञान सीमित नहीं असीम था। स्थिर और अचर नहीं बल्कि गतिशील, प्रगतिशील और विकासशील था। वे अपने ज्ञानसे संतुष्ट न होकर सदा जिज्ञासु बने रहते थे। वे आविष्कार और नवीनीकरणके समर्थक थे।

दो प्रकारका विज्ञान

बुद्धिका मुख्य फल ज्ञान है। ज्ञान भाँति-भाँतिका होता है, किंतु उन सबको दो कक्षाओमें बाँटा जा सकता है—एक धार्मिक दूसरा सांसारिक।

बहुत-से लोगोका विचार है कि केवल आध्यात्मिक ज्ञान ब्रह्मविद्या ही सर्वोच्च ज्ञान होनेके कारण सीखने योग्य है। किंतु ारे प्राचीन ऋषियोंने अपने अनुभव और दिव्य दृष्टिके आधारपर यह उद्घोषणा की थी कि मनुष्यको दोनो प्रकारका ज्ञान चाहिये। ब्रह्मविद्या ईश्वर-प्राप्तिके लिये और अन्य विद्याएँ जीवनको सुखी बनानेके लिये। ईशोपनिषद्का कहना है कि जो केवल लौकिक ज्ञानके पीछे पड़े हैं वे अन्धकारमें हैं; किंतु उससे भी गहरे अन्धकारमें वे लोग हैं, जो केवल आध्यात्मिक ज्ञानमें मग्न रहते हैं।

सांसारिक ज्ञान अनीश्वरवादी अथवा ईश्वर-विरोधी नहीं है। कला, विज्ञान, साहित्य, कविता और संगीत आत्माके सीमान्त प्रदेश अथवा ब्रह्मलोककी झाँकी दिखानेवाली खिड़कियाँ हैं।

हमारे जीवनका नियन्त्रण करनेवाले बहुत-से शारीरिक, भौतिक और नैतिक नियम सांसारिक ज्ञानके अन्दर आते हैं। जाने या अनजाने इन नियमोका उल्लंघन करनेसे आप-से-आप कठोर दण्ड मिलता है। यदि जीवनको सुखी बनाना है तो इन नियमोंका अनुसन्धान और पालन करना ही होगा।

ज्ञानकी श्रेणियाँ

यह सभी जानते हैं कि ज्ञानको सत्य और मिथ्या अथवा सही और गलतमें विभाजित करना पड़ता है। किंतु सत्यकी भी मात्राएँ होती हैं। उदाहरणार्थ कुछ सत्य आंशिक होते हैं, कुछ सार्वभौमिक। कुछ दूसरे सत्योंको जन्म देते हैं' कुछ नहीं देते। कुछ नियम थोड़ोंपर, कुछ सबपर लागू होते हैं। कुछ सत्य हर समय और कुछ यदा-कदा, असाधारण परिस्थितियोंहीमें अनुभव किये जा सकते हैं। इसलिये सत्य अथवा ज्ञानके कई वर्ग करना आवश्यक है। गीताने जो वर्गीकरण किया है, वह बड़ा सुन्दर और ज्ञानके विकासके लिये अत्यन्त उपयोगी है। "जिस ज्ञानसे मनुष्य सब भूतोंमें एक परमात्माको, खण्डोंमें एक अखण्डको देखता है, वह ज्ञान सात्त्विक है। जिस ज्ञानसे मनुष्य सब प्रकारके भूतोंको भिन्न-भिन्न और अलग-अलग समझता है, वह ज्ञान राजस है। जो ज्ञान विना वास्तविकता-को समझे प्रत्येक भूतको समग्र मान लेता है, वह तर्कहीन और संकुचित ज्ञान तामस कहा जाता है (१८। २०—२२)।"

इस वर्गीकरणके अनुसार सर्वश्रेष्ठ ज्ञान वह है, जो विभिन्नतामें एकताका दर्शन करता है और नये तथ्यों तथा विचारोंका स्वागत

करता है। वह असंगत तथ्योंका एकीकरण करके एक नियमके अन्तर्गत लाता है और विभिन्न विचारधाराओंको मिलाकर एक उच्चतर सिद्धान्त स्थापित करता है। वह विरोधी मतोमे समन्वय लाता है। इस तरह वह ज्ञानका विस्तार करता है।

मध्यम वर्गीय ज्ञान विभिन्नता और भेदोको अन्तिम मानकर ज्यों-का-त्यो छोड़ देता है। बिखरे तथ्योंको एक सूत्रमे बाँधने या एक नियमके अन्दर लानेकी वह कोई प्रेरणा नहीं देता। ज्ञान-विस्तारके प्रति वह उदासीन रहता है।

निम्नतम कोटिका ज्ञान अपनेको पूर्ण और अन्तिम मानता है। उसका दृष्टिकोण संकीर्ण और विभाजनात्मक रहता है। अन्य सभी ज्ञानको वह गलत, हीन और हानिकर मानता है। एकाधिकारका दावा करके वह स्वतन्त्र विचार और ज्ञान वृद्धिपर रोक देता है।

जो धर्म अन्य सभी धर्मोंसे ईर्ष्या-द्वेष करे, जो देवदूत भूत, भविष्य और वर्तमानके सभी अन्य देवदूतोको अस्वीकार करे और जो देवता दूसरे देवताओंको सहन न कर सके, "वे सब-के-सब अधकचरे ज्ञानकी उपज हैं"। इसी प्रकार वह धर्म निम्न कोटिका है, जो मोक्ष-का एकमात्र साधन होनेका दावा करता है, जो विज्ञानको शत्रु समझता है या सांसारिक और धार्मिक कार्योंके बीच खाई खोदता है। जब सच्चे ज्ञानका उदय होता है, ऐसे अन्धविश्वास छूट जाते हैं, सभी काम भगवान्‌के काम दीखने लगते हैं और सर्वत्र ईश्वरका दर्शन होने लगता है।

समालोचनाकी क्षमता

दैनिक व्यवहारके लिये प्रत्येक व्यक्तिमें समालोचनात्मक क्षमता

होनी चाहिये, जिससे वह पदार्थों और विचारोंका मूल्यांकन कर सके, अनाजको भूसीसे, आवश्यकको अनावश्यकसे और आंशिक सत्यको सार्वभौमिक सत्यसे पृथक् कर सके तथा सबके हित और कुछ लोगोंके हितके भेदको समझ सके। इस शक्तिको विवेक कहते हैं और आध्यात्मिक जगत्में इसका बड़ा ऊँचा स्थान है।

वास्तवमें गीताने इसी आधारपर बुद्धिकी तीन श्रेणियाँ बतायी हैं। "प्रवृत्ति और निवृत्ति, कर्तव्य और अकर्तव्य, भय और अभय तथा बन्धन और मोक्षको जो बुद्धि तत्त्वसे जानती है, वह सात्त्विक है। जिस बुद्धिके द्वारा मनुष्य धर्म और अधर्म तथा कर्तव्य और अकर्तव्यको भी ठीक-ठीक नहीं जानता, वह बुद्धि राजसी है। अज्ञानसे ढकी हुई जो बुद्धि धर्मको अधर्म मानती है तथा सभी बातों-को उलटा समझती है, वह बुद्धि तामसी है"। (१८। ३०-३२)

कुशाग्र बुद्धि जीवन-यात्राके लिये आवश्यक तो है, किन्तु साधुता नहीं है और न साधुता या सदाचारका प्रमाणपत्र ही है। तीव्र बुद्धिवाले कुछ लोग खूनी, डाकू और जालसाज बन जाते हैं।

सभी जानते हैं कि सत्ता भ्रष्ट करती है। बौद्धिक सत्ताका भी वही प्रभाव होता है। इसलिये बुद्धि जितनी तेज हो उतना ही ऊँचा और सात्त्विक चरित्र उसे कुमार्गपर जानेसे रोकनेके लिये चाहिये। बुद्धिके साथ-साथ नैतिकताका भी विकास करना चाहिये। वह बुद्धि व्यर्थ है, जो कर्तव्य-पालन और परोपकारकी शिक्षा नहीं देती। वह बुद्धि खतरनाक है, जो मनुष्यको दुराचारकी ओर प्रेरित

करती है। बुद्धि तभी बुद्धियोग बनती है, जब वह मनुष्यको कर्मठ, सदाचारी और निःस्वार्थ बनाती है।

हमारे शास्त्रोंकी एक विशेष देन—यह उपदेश है कि सत्कर्मोंके करते रहनेसे बुद्धि तीव्र और निर्मल होती है। कुकर्मोंमें रत रहनेसे बुद्धि मलिन हो जाती है और अन्तमे इतनी कुंठित हो जाती है कि व्यक्ति अपनी मूर्खतासे अपना ही सर्वनाश कर डालता है। मनुष्य स्वस्थ और सुखी तभी रह सकता है जबतक वह अपनी बुद्धिका प्रयोग करता रहता है और सत्कार्योंमें लगा रहता है।

विज्ञान और धर्म

मानव-मस्तिष्ककी दो महान् उपलब्धियाँ हैं। एक हमारे ऋषि मुनियोंका खोजा हुआ ब्रह्मज्ञान। दूसरे विज्ञानके अनुसंधान, जिसमें पिछले सौ वर्षोंमें पश्चिमके देशोंने आश्चर्यजनक उन्नति की है। मोटे तौरपर विज्ञान जीवन-निर्वाहके साधन जुटाता है, धर्म जीनेकी कला और साधनोंका उचित उपयोग सिखाता है। विज्ञान और धर्म मनुष्यकी अलग-अलग आवश्यकताओंको पूरा करते हैं। वे एक-दूसरेके मित्र और सहायक हैं, शत्रु नहीं। मनुष्यको दोनों चाहिये तथा दोनोंको एक-दूसरेकी आवश्यकता है।

व्यक्तिविशेषपर आधारित धर्म विज्ञानसे कतराते हैं। परतु हिन्दू-धर्मको ऐसा करनेका कोई कारण नहीं। वह विज्ञानकी तरह शाश्वत सिद्धान्तोंको प्रतिपादित करता है और उन्हींकी तरह अटल तथा अमर है। विज्ञानद्वारा उसके उपदेशोंकी तुलना करनेसे उनका महत्त्व घटता नहीं वरन् बढ़ जाता है। सच तो यह है कि तर्क

और विज्ञानका सहारा लिये बिना उनके गहरे और गूढ़ भावोंको भलीभाँति समझा ही नहीं जा सकता।

परंतु हमे यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि हमारा प्रचलित धर्म शास्त्रोंसे सर्वथा भिन्न, बल्कि विपरीत है। शास्त्रोंमें बताये हुए धर्मके चार चरणोमे हम केवल एक अथवा पूजा, ध्यान और जपको तथा चार पुरुषार्थोंमेसे केवल मोक्षको मान्यता देते हैं। धर्मके मूल तत्त्वोंकी अवहेलना करनेके कारण ही हमारा समाज प्रायः बलहीन और प्राणहीन हो गया है। समयके प्रहारोने धर्मके कई मूल्यवान रत्नोंको कूड़ा-करकटसे ढक दिया है। इस कूड़ेकी सफाईके लिये धर्मका वैज्ञानिक अध्ययन आवश्यक है।

गीताके अनुसार योगकी एक परिभाषा है—पीड़ाके बन्धनसे मुक्ति (६ । २३)। विज्ञान और शिल्प-विज्ञान रोग तथा कष्टको घटाते है और सुखको बढ़ाते हैं। इसलिये योगके साधनों और चार पुरुषार्थोंमेंसे दो अर्थ एवं कामके अन्तर्गत आते हैं। इस प्रकार वे धर्मके महत्त्वपूर्ण अंग है। वे आध्यात्मिकताका पोषण कर सकते हैं, किन्तु तभी जब उनके फलोंको धार्मिक तरीकोंसे प्राप्त किया जाय और सबकी भलाईके लिये प्रयोग किया जाय।

विज्ञानकी सबसे बड़ी सीख है लोक-कल्याणके लिये पारस्परिक सहयोग और सामूहिक प्रयास। यदि धर्माचार्य और धर्मात्मा लोग भी आपसी विरोध छोड़कर, एक-दूसरेसे मिल-जुलकर संयम, सदाचार और निष्काम सेवा सिखानेके लिये भरसक पुरुषार्थ करें तो शीघ्र ही

नये मानव और नये संसारका निर्माण कर सकते हैं और पृथ्वीको स्वर्ग बना सकते है।

धार्मिक विचारोंका परीक्षण

हम बिना शंका किये उन सभी बातोंको मान लेते है जो हमे अतीतसे मिली है या परम्परा और सत्ताद्वारा स्वीकृत है। किंतु जब धर्म-गुरुओमे मतभेद हो—जैसा बहुधा होता है—तब केवल श्रद्धा और विश्वाससे काम नहीं चलता और सत्यका पता लगानेके लिये अन्य स्वतन्त्र, सार्वभौमिक और प्रामाणिक कसौटियोका आश्रय लेना पड़ता है।

उदाहरणार्थ, एक विचारधारा कर्मयोगको ध्यानकी भूमिका मात्र मानती है और केवल ध्यानको ही ईश्वर-प्राप्तिका साधन बताती है। दूसरी कर्मयोगको मोक्षके लिये पूर्ण, प्रभावी और यथेष्ट बताती है। तीसरीके अनुसार भगवत्प्राप्तिके लिये कर्मयोग ध्यानयोगके बराबर ही नहीं, बल्कि उससे श्रेष्ठ है (गीता १२।१२)

यह दुविधाकी स्थिति न तो सराहनीय है, न हितकर। ऐसे सभी प्रसगोमे हमे ठीक-ठीक निर्णय करना होगा और जनताको साफ-साफ बताना होगा कि जनसाधारणके लिये कौन-सी विचारधारा तर्क-सम्मत, कल्याणकारी और भगवान्‌की इच्छा तथा योजनाके अनुरूप है। यह तो स्पष्ट ही है कि एक विचारको मान लेनेपर अन्य सभी विचार अस्वीकृत और उपेक्षित हो जाते हैं। यह तो हम अब भी कर ही रहे है, किंतु परम्पराके आधारपर। हमे करना केवल इतना है कि सभी मतोको खूब

ठोक-बजाकर परखे और जो मत तर्क तथा ज्ञान और अनुभवकी कसौटीपर खरा उतरे तथा मानवमात्रके लिये सबसे गुणकारी जान पडे उसीको अपनायें एवं उसीको व्यवहारमे लाये ।

श्रद्धा और तर्क

श्रद्धा मनुष्यके लिये दैवी देन है। जीवनमें उसकी महत्वपूर्ण भूमिका है । वह धर्मकी कुंजी है और बहुधा धर्मकी सम्मर्थी मानी जाती है। वह ऐसी रहस्यमयी शक्ति है, जो संकटके समय आशा, आत्मविश्वास और साहसकी प्रेरणा देती है । दैनिक-जीवनमे बार-बार उसका सहारा लेना पड़ता है । अपने-अपने मित्रो और मानव-स्वभावपर निष्ठाके विना हमारा जीवन दूभर हो जायगा । बच्चा अपने बड़ोपर विश्वास करके ही बहुत-सी बातें सीखता है। एक धर्मात्माके लिये ईश्वरकी निष्ठा सदा सुख, शक्ति और ज्ञान-दायिनी होती है ।

यह सब निष्ठाके अच्छे उपयोग हैं। किंतु श्रद्धाको तर्क, प्रयास और नैतिकतासे संयुक्त करके प्रयोगमें लाना चाहिये, उनसे पृथक् करके नहीं। तर्कका विरोध अथवा अस्वीकार करनेवाली निष्ठा अन्धी होती है। जैसे जीवनोपयोगी वस्तुओंको प्राप्त करनेके लिये ईमानदारीसे परिश्रम करनेकी बजाय प्रार्थना, जप और ध्यानका प्रयोग करना । कोई व्यक्ति अथवा जाति अन्धविश्वासके बलपर सुखी या सफल नहीं हो सकती ।

हमारे धर्मग्रन्थ अन्धविश्वासके खतरोंसे खूब परिचित थे । उदाहरणार्थ, महाभारतका कथन है, "यह जानकर कि अमुक

विचार अथवा प्रथा बहुत समयसे चली आ रही है, हम उसके बुरे प्रभावोंपर ध्यान नहीं देते है, किंतु ठीक यही होगा कि किसी कार्य-पद्धतिको अपनानेसे पहले उसके परिणामोंपर विचार कर लिया जाय। केवल इसलिये किसी कामको करना कि दूसरे भी उसे कर रहे हैं, ठीक नहीं है।

"मनुष्यको किसी कामको करने या न करनेसे पहले उससे होनेवाले हानि-लाभपर विचार कर लेना चाहिये।

"बुद्धिमान लोग ऐसे कार्योंमें विलम्ब नहीं करते, जिनकी जड़ (आवश्यक परिश्रम) तो छोटी है और फल बड़ा है। ऐसे कामके सम्पन्न करनेमें वे किसी बाधाको नहीं आने देते।"

शंकराचार्यने अपनी अपरोक्षानुभूतिमें बताया है कि ज्ञान केवल विचार और चिन्तनहीसे आता है, ठीक उसी प्रकार जैसे प्रकाश-के बिना कुछ भी देखा नहीं जा सकता। इसके अतिरिक्त ठीक-ठीक कारण जाननेके लिये पहले उसकी अनुपस्थिति और फिर ..की उपस्थितिमें क्या होता है यह पता लगाना चाहिये। तभी कार्य और कारणमें अचूक सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है।

कार्य और कारण, साध्य और साधनमें अटल सम्बन्ध स्थापित करना एवं वाञ्छनीय वस्तुओंको प्राप्त करनेके सुगम और श्रेष्ठ उपायोंको ढूँढ़ना बुद्धिका एक बड़ा काम है। यह ज्ञान हो जानेपर हमें बहुपरीक्षित उपायोंको ही प्रयोगमें लाना चाहिये और संदेहात्मक अथवा दुष्कर पुराने तरीकोंको छोड़ देना चाहिये।

हममेंसे अधिकांश लोग धार्मिक हैं। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष-रूपमें धर्म सदा हमारे साथ रहता है। फलस्वरूप, धर्मसे अलग दीखनेवाली भी कितनी समस्याओंकी जड़ें धार्मिक विश्वासों और प्रथाओंमें छिपी रहती हैं। धार्मिक भ्रमों और भूलोंको दूर करके ही इन समस्याओंका स्थायी और संतोषजनक हल निकाला जा सकता है। जैसे हमको आश्वासन दिलाया जाता है कि इस वर्षमें गरीबी मिटा दी जायगी, किन्तु यह स्वप्न कभी पूरा न हो सकेगा। जबतक धर्मपरायण बहुत-से लोग यह मानते रहेंगे कि सांसारिक काम और वस्तुएँ यहाँतक कि अपने भाइयोंका कष्ट-निवारण और परोपकार भी हमको संसारसे बाँधते हैं एवं परमात्मासे मिलनेमें बाधक हैं।

अपील

हमारे शास्त्रोंने बिल्कुल स्पष्ट कर दिया है कि जीवनके सभी कामोंमें बुद्धिका प्रयोग करना चाहिये। उन्होंने यह चेतावनी भी दी है कि बुद्धि या तर्कका ह्रास हो जानेसे मनुष्यका नाश हो जाता है और दैव जब किसीको दण्डित करना चाहता है तब उसे लाठीसे नहीं मारता, केवल उसकी बुद्धि हर लेता है।

गीतामें भगवान् कृष्णकी उद्घोषणा है "उन निरन्तर मेरे ध्यानमें लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजनेवाले भक्तोंको मैं बुद्धि-योग देता हूँ, जिससे वे मुझे ही प्राप्त हो जाते हैं। उनके ऊपर अनुग्रह करनेके लिये ही हमें स्वयं उनके अन्तःकरणमें एकीभावसे

स्थित हुआ अज्ञानसे उत्पन्न हुए अन्धकारको प्रकाशमय ज्ञानदीपद्वारा नष्ट कर देता हूँ।" (१०।१०-१२)

भगवान् कृष्ण तो अपने भक्तोंको कृपा करके ज्ञानका जगमगाता हुआ दीप प्रदान करना चाहते हैं, परंतु आजकलके भक्त उसे हेय और भक्तिको श्रेष्ठ समझते हैं तथा केवल भक्तिहीका वरदान चाहते हैं। परमात्माकी योजना, विधान और इच्छाकी अवहेलना करके हमने बुद्धिके स्थानपर श्रद्धा, विश्वास-भक्तिको जीवन-सारथी बना दिया है। बिना बुद्धिका विश्वास अन्धविश्वास होता है। इसलिये हम न तो दूसरोंकी ओर न अपनी ही गलतियोंसे सीखते हैं। हमने सोचना-विचारना बन्द कर दिया है। हम धर्म, अधर्म, कर्तव्य, अकर्तव्यके विवेकको खो बैठे हैं, यहाँतक कि अपने हित-अहितको भी नहीं समझते। यही कारण है कि हमारा समाज दीन, दुखी, दुर्बल और दरिद्र होता जा रहा है।

हमारे पूर्वज साहसी और उद्यमी थे। उन्होंने सुदूर देशोंमें जाकर राज्य स्थापित किये और मन्दिर बनवाये। पर ज्यों-ज्यों हमारे जीवनसे बुद्धिका बहिष्कार होता गया हमलोग कमजोर, निरुत्साही और लकीरके फकीर बनते गये। समुद्र पार करना पाप समझा जाने लगा। यद्यपि यह निषेधाज्ञा तो अब समाप्त हो गयी है, किन्तु भाँति-भाँतिके अन्धविश्वास और कुरीतियाँ अब भी हमें जकड़े हुए हैं, जैसे छूआछूत, जातिवाद और दहेज-प्रथा।

धर्मद्वारा बुद्धिका तिरस्कार हो जानेके बाद जो थोड़ी-सी मेधा हमारे पास बची है वह नाममात्र है, जो धर्मको अधर्म और सहीको गलत समझती है। उदाहरणार्थ, हमारे शास्त्रोंका महावाक्य है कि जो कुछ भी है सब ब्रह्म है। पर हमलोगोंने यह दृढ़ धारणा बना ली है कि संसार ब्रह्म नहीं है और जितनी जल्दी हम यहाँसे निकल जायँ उतना ही अच्छा है। वेदोंके अनुसार यह शरीर परोपकारके लिये है और गीताने स्पष्टरूपसे कहा है कि कर्मफल-त्याग ध्यानसे (भी) श्रेष्ठ है। किंतु हम लोगोंकी नवीन खोज यह है कि ध्यान भगवत्-प्राप्तिका अन्तिम, अनिवार्य और एकमात्र साधन है और दूसरोंके साथ भलाई करना एक सस्ती फिलासफी है, जो भगवान्‌की राहमें हमें बहुत दूर नहीं ले जा सकती है। हमारे शास्त्रोंका आदेश तो यह है कि सब प्राणियोंमें स्थित भगवान्‌को देखो और पूजो, परंतु प्रचलित धर्म उसका संशोधन और संक्षेप करके केवल अपने भीतर भगवान्‌की ज्योति देख लेनेको ही साधनाका ध्येय बताता है।

हम वेद और गीताकी दुहाई तो देते हैं, पर हमने उनकी शिक्षाओंको काट-छाँटकर अपने आकार और स्वभावके अनुरूप छोटा बना लिया है। थोड़ी-सी बातोंको समग्र धर्म मानकर हमने शास्त्रोंके बहुत-से मूल्यवान् और जीवनदायी उपदेशोंको त्याग दिया है। स्वामी रामतीर्थ और श्रीअरविन्द दोनोंहीकी सम्मति थी कि भारतवर्षकी अवनतिका मुख्य कारण व्यावहारिक ज्ञानकी कमी अथवा बौद्धिक शक्तिका घट जाना है।

आइये, हम अपने हृदयमें ज्ञानदीपको फिरसे जलायें। आइये, हम जीवनकी वास्तविकताओंको फिरसे समझें और बुद्धि तथा ज्ञानको जीवन-सारथीके रूपमें फिरसे स्वीकार करें। आइये, हम अपनी प्रबुद्ध प्रज्ञाद्वारा छिलकेको गूदेसे अलग करें और परस्पर-विरोधी मत-मतान्तरोंमेंसे अटल सत्यको खोज निकालें। आइये, हम अपनी सभी मान्यताओं, रीति-रिवाजों और प्रथाओंकी जाँच-पड़ताल करें तथा उन सभीको विषके समान त्याग दें जो हानिकारक सिद्ध हो चुकी हैं, जो मनुष्योंको एक-दूसरेसे लड़ाती हैं या दूर करती हैं, जो हमें कमजोर, अकर्मण्य, शिथिल या गैरजिम्मेदार बनाती हैं या समाजके पिछड़े हुए वर्गोंके प्रति उदासीन करती है। साथ-ही-साथ हमें उन विचारोंका उत्कर्ष और प्रचार करना चाहिये जो मानव-जातिको एक-दूसरेके निकट लाते हैं और चरित्र, जीवनके प्रति आदर, आत्म-बलिदान, कर्तव्य-निष्ठा, वफादारी, सहयोग और प्रेमपूर्ण सेवापर जोर देते हैं।

हमें योगवासिष्ठके इन बहुमूल्य शब्दोंको हृदयमें जमा लेना चाहिये—"भगवान् विष्णुकी कितनी ही पूजा-आराधना क्यों न की जाय, उन्हें चाहे कितना भी प्रसन्न क्यों न कर लिया जाय, वे ऐसे आदमीको आत्मज्ञानका वरदान नहीं दे सकते जो स्वयं विचार-मनन नहीं करता।....एक बालककी भी बातको मान लेना चाहिये यदि वह तर्कसंगत हो और ब्रह्माजीकी बातको भी तिनकेके समान ठुकरा देना चाहिये यदि वह तर्कसम्मत न हो।"



वेदान्तका अर्थशास्त्र

बहुत लोगोंका विश्वास है कि धर्म और धन—दोनों परस्पर विरोधी है। बाइबिलमें तो यहाँतक कहा गया है कि धनवान्के स्वर्गमें प्रवेश करनेकी अपेक्षा ऊँटका सूईके नाकेमेंसे निकल जाना अधिक सुगम है। हिन्दू-समाजमें भी यह भ्रान्ति काफी फैली हुई है कि सम्पत्ति बुराइयोंकी जड़ है और साधनाके मार्गमें रोड़ा है।

जीवनके सभी पहलुओंका गहरा अध्ययन करनेके बाद हमारे ऋषि-मुनियोंने मानवमात्रके लिये चार प्रमुख उद्देश्य या पुरुषार्थ निर्धारित किये—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। जीवनके बिना साधना और भगवत्प्राप्ति नहीं हो सकती और जीवनका निर्वाह बिना अर्थके नहीं हो सकता। यह केवल संतोंका मत ही नहीं वरन् विधिका विधान है, जो चाहे अच्छा हो या बुरा बदला नहीं जा सकता। और न इसे बदलनेकी जरूरत ही है; क्योंकि इसके भीतर काम करके भी मनुष्य सब कुछ प्राप्त कर सकता है।

अभावग्रस्त समाज न सुखी हो सकता है न स्वस्थ, न सुशिक्षित। जो लोग दिन-रात रोटी-दालकी चिन्तामें डूबे रहते हैं, जिनके भूखे नंगे शरीर रोगी और दुर्बल हो गये हैं, क्या उनका मन ध्यान और जपमें लग सकता है? क्या उनसे संयम, सदाचार और अनुशासनकी आशा की जा सकती है? धनके बगैर न तो जीवन

सुखी बन सकता है और न धर्म टिक सकता है। धर्मके कितने काम ऐसे हैं जिन्हे निर्धन मनुष्य कर ही नहीं सकता। इस अटल सिद्धान्तको न समझनेके कारण हमारा समाज अर्थकी अवहेलना करने लगा, पुरुषार्थ और सदाचारको भूल गया, बरसोतक गुलाम बना रहा और स्वतन्त्रता पा जानेके बाद भी दरिद्रता, भ्रष्टाचार, अकर्मण्यता और अराजकताका शिकार बना हुआ है।

'नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं।' हमें इस भ्रममें कदापि न पड़ना चाहिये कि दरिद्रता पुण्य कर्मोंका फल है और दीन-दुखी तथा गरीब लोग परमात्माको विशेषरूपसे प्रिय है। गीतामें भगवान् कृष्ण अपनेको धनका देवता कुबेर (१० । २३) और धनकी देवी श्री (१० । ३४) बताते हैं, अर्जुनको उनका स्पष्ट आदेश है कि 'उठ, धन-धान्यसे सम्पन्न राज्यको भोग' (११ । ३३)

वेदोंमें धन और वैभवके लिये अनेक प्रार्थनाएँ हैं। 'हम सौ वर्षतक दुर्बल और दरिद्र न बनें।' 'मैं मनुष्योंमें तेजस्वी और धनवानोंमें अग्रगण्य बन जाऊँ।' 'हम वैभवके स्वामी बनें।' 'सौ हाथोंसे धन कमाओ।' 'अपने पुरुषार्थसे धन कमाओ।'

धन सारे समाजके लिये कमाओ

समाजके बहुत-से व्यक्ति धन कमानेमें असमर्थ है, जैसे बच्चे, बूढ़े, रोगी, विकलाङ्ग और बहुत-सी महिलाएँ तथा साधू। इसलिये जो लोग धनोपार्जनमें लगे हैं उन्हे सारे समाजकी आवश्यकताओंके अनुरूप धन कमाना चाहिये और उसे सारे समाजके लिये खुले हाथसे खर्च भी करना चाहिये। जो समाजसे लेता तो है पर समाजको देता

कुछ नहीं वह चोर है (३ । १२)। जो केवल अपने लिये खाना पकाता है वह पाप खाता है (३ । १३) और जो संसारचक्रके सञ्चालनमें योगदान नहीं देता उसका जीवन व्यर्थ है (३ । १६) जो दूसरोंके लिये जरा भी कष्ट नहीं उठाता वह लोक और परलोकमें कहीं भी सुखी नहीं हो सकता (४ । ३१)।

सच तो यह है कि धन भगवान्‌हीका एक रूप है, भगवान्‌हीकी कृपा और शक्तिसे मिलता है और भगवान् अर्थात् समष्टि या समाजहीका है। इसलिये सबकी भलाईके लिये ही उसका उपयोग होना चाहिये। धन किसी धनीकी मिलकियत नहीं, केवल धरोहर मात्र है।

इस विषयमें श्रीअरविन्दने अपनी पुस्तक "माता"में लिखा है—"रुपया एक विश्वव्यापी शक्तिका चिह्न है······ वह जगत्‌की पूर्णताके लिये अनिवार्य है···यह शक्ति ईश्वरकी ही है।

"कुछ लोग धनको छूना भी पाप समझते है और दरिद्रता एवं अपरिग्रहको ही एकमात्र अध्यात्मकी अवस्था मानते हैं। पर यह भूल है। इससे यह शक्ति दानवी शक्तियोंके ही हाथमें रह जाती है। सारा धन ईश्वरका है और साधकके लिये श्रेष्ठ परावुद्धिका मार्ग यही है कि ईश्वरके लिये इसे फिर जीत ले और दैवी पद्धतिसे दैवी जीवनके लिये इसका उपयोग करे।··· सारी सम्पत्ति भगवान्‌की है। जिनके कब्जेमें यह है वह इसके स्वामी नहीं केवल ट्रस्टी या न्यासी है।"

वेदोंमे अगर एक ओर यह आदेश है कि सौ हाथसे धन कमाओ तो दूसरी ओर यह आदेश भी है कि एक हजार हाथसे दान करो 'दान करनेसे धन कभी नहीं घटता। दानशील कभी दुखी या दरिद्र नहीं होते, बल्कि अमरत्वको प्राप्त होते हैं।' धर्मके लिं जितना महत्त्व धनोपार्जनका है उससे कहीं अधिक परोपकारका है

हर कोई यह चाहता है कि जो धन उसने कमाया है वा सदा उसीके पास रहे। पर वास्तवमें होता यह है कि मरते समय सा दौलत यहीं छूट जाती है। हाँ, एक सहज उपाय है सम्पत्तिको सा ले जानेका। जो धन तुम दूसरों या समाजकी भलाईमें लगा देते हो वह वैकुण्ठ या परमार्थके बैंकमें पहुँच कर तुम्हारे खातेमें जमा हो जाता है। वह सदाके लिये तुम्हारा हो जाता है।

धन कमानेके धन्धे

धन कमानेके लिये अनेक उद्योग-धन्धे हैं। लोकसंग्रह यह सभी काम भगवान्के काम है, भगवान्की पूजा हैं औ भगवत्-प्राप्तिके साधन है। सांसारिक दृष्टिसे विभिन्न उद्यम ऊँचे नीचे समझे जाते हैं। परंतु भगवान्को तो सभी समान रूपसे प्रिय हैं। और सभी भगवान्तक पहुँचानेमे समर्थ है।

गीताका मनपसंद योग नित्य, सतत या पूर्णकालिक औ सर्वतो-मुखी योग है, और इसमेसे सांख्य और योगकी समानता (५। ४, ५) सब उद्यमोंकी समानता (१८। ४५, ४६) तथा कर्मयोग और [कर्म] संन्यासकी समानता (३। १) के महत्वपूर्ण उपसिद्धान्त निकलते है। भगवत्-प्राप्तिके लिये

किसी विशेष क्रियाकी जरूरत नहीं, बल्कि आवश्यक यह है कि सारा काम निपुणतासे और अनासक्त होकर किया जाय (३ । १९), या सब भूतोमे स्थित परमात्माकी आराधना समझकर किया जाय (६ । ३१), या परम पुरुपको समर्पण करके किया जाय (९ । २७-२८) जो सब प्राणियोके रूपमे सदा हमारे समक्ष विद्यमान और सुलभ है (७ । ७, ९, १९) ।

इस सिद्धान्तने गीताधर्मको सार्वभौम और लोकतन्त्रात्मक बना दिया है । इसके सिवा कोई दूसरा सिद्धान्त न तो तर्कसम्मत और न्यायसंगत होता और न उस परमेश्वरके लिये शोभनीय ही होता जो सबमें समान रूपसे व्याप्त है और सबको समान रूपसे प्यार करता है (९ । २९, १३ । २७) ।

शास्त्रोके इन सब उपदेशोकी अवहेलना करके प्रचलित धर्मा-धार्मिक कृतियोको ही भगवत्प्राप्तिका एकमात्र साधन बताता है । यह व्यापक विश्वास पुरुषार्थ और नैतिकता दोनोंके लिये घातक है । इसीने आलस्य और भ्रष्टाचारको प्रोत्साहन देकर समाजको दरिद्र, दुर्बल और दुखी बना दिया है । इसीने हमारे समाजके सबसे पिछड़े वर्गको अछूत बना रखा है जिसके कारण वे दूसरे धर्मोंकी शरणमें जा रहे हैं । सबको समान वेतन तो नहीं दिया जा सकता किंतु सबको और सबके कामको सम्मान देनेमें तो कोई कठिनाई नहीं— सिवा अपने अहंकारकी ।

इस गलत विचारधाराका एक और दुष्परिणाम यह है कि अच्छे लोग सांसारिक कार्योंकी ओरसे उदासीन हो जाते है और

सारे लौकिक उद्योग-धन्धे और शासन अधिकांशत: उन लोगोंके हाथमें आ जाते हैं जिनकी धर्ममें कोई आस्था नहीं। इसलिये हमारे देशमें समर्पित और निःस्वार्थ कार्यकर्ताओंका अभाव है। कोई धर्मशील पुरुष सांसारिक कामोंमें तभी अपना मन लगा सकता है जब उसे पूरा विश्वास हो जाय कि उनके करनेसे परमेश्वर उतना ही प्रसन्न होगा जितना पूजा-पाठसे।

भिक्षा-वृत्ति

हमारे देशमें एक धन्धा बहुत प्रचलित है—भीख माँगना। संन्यासियोंके लिये शास्त्रोंमें इसका विधान है। इस प्रथासे साधुओंका समाजसे घनिष्ठ सम्बन्ध बना रहता था। साधुओंकी देख-भालका भार समाजपर रहता था और साधुलोग समाजके प्रति अपने उत्तर-दायित्वको समझते थे। दुर्भाग्यवश, संन्यासियोंकी देखा-देखी दूसरे भक्त भी यह समझने लगे कि भीख माँगना साधुताका लक्षण है और भक्तको किसी व्यवसायमें न फँसकर केवल भगवान्‌हीसे माँगना चाहिये।

इस प्रकार उद्योगोंमें सबसे अधिक धार्मिक भीख माँगनेका पेशा बन गया है। मेहनत करके अपने पैरोंपर खड़े होनेकी बजाय भक्त भगवान्‌के आगे, निर्धन धनीके आगे, फकीर राहगीरके आगे और सारा देश अन्य देशोंके आगे हाथ पसारता रहता है।

मनुष्य हट्टे-कट्टे भिखारियोंसे खुश नहीं होते। क्या भगवान्‌को ऐसे भिखारी पसंद हैं? वेदोंमें उद्योग और पुरुषार्थपर

वल देनेवाली अनेक सूक्तियाँ है। 'क्रियाशील मनुष्य अपने पुरुषार्थसे सुख प्राप्त करता है।' 'मेरे दाहिने हाथमे परिश्रम और बाँये हाथमें विजय है।' निष्क्रिय व्यक्तिका शीघ्र ही नाश हो जाता है।' 'अपने पुरुषार्थसे तुम अपने भाग्यका निर्माण कर सकते हो।' 'क्रियाहीन मनुष्य चोर है।' 'हे अग्नि! हम सभी अच्छी वस्तुओको अपने शक्तिशाली कार्योंद्वारा प्राप्त करे।'

गीताका आरम्भ ही इस वातसे हुआ है कि अर्जुन अपने कर्तव्यको छोडकर भिक्षावृत्तिको अपनाना चाहता था। भगवान् श्रीकृष्णने उसको यही उपदेश दिया कि 'उठ खडा हो और कर्तव्यरूपी लड़ाईको लड़।' पूरी गीतामें पुरुषार्थपर जोर दिया है न कि भिक्षाटनपर। अपना विश्वरूप दिखाते हुए भगवान्‌ने फिर कहा—'तू खड़ा हो और यशको प्राप्त कर।' (११।३३)

स्वामी विवेकानन्दने भगवान्‌से माँगनेको भी हेय बताया है। 'याचना करना प्रेमकी भाषा नहीं। परमात्मासे भी मोक्ष या दूसरी कोई चीज मॉगना उतना ही निकृष्ट काम है।' उन्होंने अपने 'कर्मयोगमे महानिर्वाणतन्त्रके इस वाक्यपर बहुत जोर दिया है।' जो गृहस्थ धन-प्राप्तिके लिये पुरुषार्थ नहीं करता वह नीतिविहीन है। यदि वह धन कमाता है तो सैकड़ोका भला करता है। अगर धनिक लोग न हो तो सभ्यता, पुण्यशालाओं और धर्मक्षेत्रोका क्या होगा? धन कमाना बुरा नहीं है; क्योंकि गृहस्थ समाजका केन्द्र है। शुद्ध रुपया कमाना और उसे धर्मार्थ खर्च करना प्रभुकी उपासना है। जो गृहस्थ अच्छे साधनोंसे और अच्छे

पाप है। इससे समस्याका हल नहीं होता; बल्कि समस्या और भी जटिल हो जाती है।

हमारे देशमें सभी चीजोंकी कमी रहती है। जरूरतमंदोंकी विवशताका अनुचित लाभ उठाकर लोग कीमतों और किरायोंको मनमाने ढंगसे बढ़ाये चले जा रहे हैं। कुछ हदतक मूल्य-वृद्धि न्यायोचित और अवश्यम्भावी हो सकती है; परन्तु इसका बहुत बड़ा भाग लोभ और स्वार्थपरताके कारण है। मूल्य-वृद्धिने ऐसा उग्र रूप धारण कर लिया है कि हमारे सारे आर्थिक ढाँचेको भयंकर खतरा पैदा हो गया है। लाभ कमानेके दो तरीके हो सकते हैं। एकमें उत्पादन और बिक्रीको अधिकतम और मूल्यों, किरायों तथा करोंको न्यूनतम रखा जाता है। दूसरेमें उत्पादन और बिक्रीको न्यूनतम और मूल्योंको अधिकतम रखा जाता है। इनमेंसे केवल पहला तरीका ही नैतिक है और परमार्थ-साधनमे सहायक हो सकता है। यह भी कोई अच्छी प्रथा नहीं कि उपभोक्ताओंको आकर्षित करनेके लिये मूल्योंको घटानेके बजाय लाखों रुपये विज्ञापनमें व्यय किये जायँ।

सरकार, मिल-मालिक और श्रमिक सभीको जनता-जनार्दनकी सेवा करनेके लिये कीमतें और कर कम-से-कम रखना और जरूरतकी वस्तुओंको सबके लिये सुलभ करना चाहिये। इसके विपरीत जगह-जगह हड़ताल और दंगा होता रहता है और पूँजीपति अपना लाभ बढ़ाना चाहते हैं तो कर्मी वेतन बढ़ानेके लिये आन्दोलन करते रहते हैं।

एक ओर दरिद्रता और बेरोजगारी तो दूसरी ओर फिजूलखर्ची और वैभव-प्रदर्शनके दानव खड़े हैं। बहुत-से लोग पैसेके पीछे मतवाले हो रहे हैं। भ्रष्टाचार, जमाखोरी, चोरबाजारी और मुनाफाखोरीका बोलबाला है। जिसके कारण हमारा सारा अर्थतन्त्र जर्जर हो गया है। अर्थ जीवनके लिये आवश्यक जरूर है पर उसके दुरुपयोगके बहुत बुरे परिणाम होते हैं।

दूसरोंको दुःख देकर प्राप्त किया हुआ धन कभी सुख नहीं पहुँचा सकता। हमारे शास्त्रोंके अनेक वाक्योंने इसपर जोर दिया है। "धन सत्य, न्याय और परहितका ध्यान रखते हुए पवित्र साधनोंसे कमाया जाय और उसका जनताके हितमें व्यय किया जाय।" "पापकी कमाई छोड़ दीजिये। कठोर श्रम, अध्यवसाय, पुण्यभाव और सेवाभाव रखकर ही कमाया धन मनुष्यके पास टिककर उसे स्थायी लाभ पहुँचाता है। बेईमानीकी कमाईसे कोई फूलता-फलता नहीं।"

अर्थ और जीवनके सुख

धन जीवनकी आवश्यकताओं और सुख-साधनके लिये जरूरी है। यह सभीका कर्तव्य है कि अपने और दूसरोंके जीवनको सुखी और विकसित बनाये। पर सुख-सुविधाओंका संसारमें अन्त नहीं और उनकी चाह यदि नियन्त्रित न की जाय तो बुरे रास्तेमें चली जायगी और अन्तमें विनाशक सिद्ध होगी।

हमें गीतामें बतायी हुई सुखकी तीन श्रेणियोंको सदा ध्यानमें रखना चाहिये। जो सुख आरम्भमें विषतुल्य और अन्तमें अमृतके समान होते हैं, जो अभ्याससे उत्तरोत्तर अधिक आनन्द देते हैं,

अपील

लोकसंग्रह, परहित, यज्ञ, दान और कर्मफल त्याग-जैसे शब्दोंद्वारा यही पाठ पढ़ाया गया है। विदुरनीतिने इस आदर्शको बहुत सरल शब्दोंमें प्रस्तुत किया है—'मनुष्य अपने लिये जो सुख-सुविधा चाहता है वही दूसरेको भी मिले। ऐसा विचार कर अपने उपयोगसे जितना धन बच जाय उसे गरीबोंमें बाँट देना चाहिये। सबको सुख पहुँचानेसे जो सुख प्राप्त होता है, उसे धर्म माना गया है।"

जो बड़ा है वह छोटोंको आदर, प्यार और सेवा दे। धनी धनद्वारा, ज्ञानी ज्ञानद्वारा, शक्तिमान् शक्तिद्वारा, अधिकारी अधिकार-द्वारा, कर्मी श्रमद्वारा समाज-कल्याणमें अपनेको समर्पित करे। और यह सब किसीपर एहसान जताकर या अपनी पूजा करानेके लिये नहीं बल्कि अपने भाइयोंको भगवान्का चलता-फिरता प्रतिनिधि या स्वरूप मानकर बड़ी विनम्रतासे करना चाहिये।

यही हमारे शास्त्रोंका बताया हुआ ईश्वरीय समाजवाद है। यही रामराज्य है और यही वैकुण्ठ है, जिसकी स्थापनाके लिये सब पुण्यात्मा और धर्माचार्योंको मिलकर प्रयत्न करना चाहिये।

धन जीवनका और इसलिये धर्मका भी आधार है! हमें धनकी महत्ता और उसके उपार्जन तथा व्ययके सही तरीकोंका जनतामें भरसक प्रचार करना चाहिये। यह समयकी माँग है और भगवान्का आदेश भी है।

आध्यात्मिकताका रहस्य

मनुष्यके व्यक्तित्वके अनेक पहलू हैं । उसके पास भाँति-भाँतिके गुण और शक्तियाँ रहती हैं—जैसे लम्बाई, वजन, रंग, स्वास्थ्य, सौन्दर्य, बुद्धि और वाक्-शक्ति । मनुष्योंमें यह गुण अलग-अलग मात्रामें पाये जाते हैं । इसलिये यह प्रश्न उठता है कि क्या इनमेंसे कोई गुण आध्यात्मिकताका सार या प्रतीक है ? उदाहरणार्थ, क्या एक स्वस्थ पुरुष एक रोगीकी तुलनामे या बुद्धिमान् मूर्खकी तुलनामें अधिक आध्यात्मिक है ?

अलौकिक शक्तियाँ

इन प्रश्नोंका उत्तर देनेमें शायद कोई कठिनाई न हो; क्योंकि, स्वास्थ्य, सौन्दर्य, बल या बुद्धिकी कोई भी आध्यात्मिकता नहीं मानता । किंतु अलौकिक शक्तियोंको—जैसे असाध्य रोगोंको अच्छा करना, हवामेंसे वस्तुओंको निकाल देना, समाधि लगाना अनेक

लोग साधुताका प्रमाग मानते हैं। रहस्यमयी शक्तियोंका संतोसे ऐसा घनिष्ट सम्बन्ध रहा है कि बहुत-से लोग उनके मोहमें पड़कर उनकी प्राप्तिके लिये प्रयास करते हैं और मिलते ही उनका प्रदर्शन करने लगते हैं।

कुछ लोग चमत्कारोको मिथ्या या ढोंग समझते हैं, किंतु धार्मिक लोग अलौकिकको आध्यात्मिक ही मानते हैं। बाईबिलमे चमत्कारोंको पावनताका चिह्न बताया है। हमारे शास्त्र यह स्वीकार करते हैं कि साधनाके मार्गमें आगे बढ़नेसे स्वतः ही अद्भुत शक्तियोका प्रादुर्भाव हो सकता है; किंतु ऐसी शक्तियोंके पीछे पड़ने या उनका प्रदर्शन करनेका निषेध करते हैं। संत तुकारामका कहना है कि "चमत्कारों-का प्रदर्शन आध्यात्मिकताकी कसौटी नहीं है। जब मनुष्य चमत्कारकी दूकान खोलकर बैठता है तो परमेश्वर उससे दूर चला जाता है। संसार तो बुरा है ही: किंतु उससे भी बुरा है शक्तिके पीछे दौड़ना"।

सच तो यह है कि रहस्यमयी शक्तियाँ केवल संतोके ही पास नहीं वरन् राक्षसों, शैतानो और कुछ सामान्य लोगोके पास भी रहती हैं। सब धर्मोकी पौराणिक कथाएँ और दैनिक जीवनके अनुभवसे यही पता चलता है। अन्वेषकोंने दूरकी बात सुनना, दूर-की चीज देखना, दूरकी चीजोंको हिला देना या आगे आनेवाली घटनाओको पहलेसे बता देना—इस प्रकारके अनेक सच्चे दृष्टान्तोंको इकट्ठा किया है, किंतु उनका पवित्रता या भक्तिसे कोई सम्बन्ध नहीं मिलता।

*

स्वामी रामतीर्थका कहना है कि "दूसरोंके मनकी बात जान लेने या अन्य अतिमानवीय शक्तियोंके प्राप्त कर लेनेसे यह सिद्ध नहीं होता कि मनुष्य अवश्य ही पवित्र या सुखी है...... जीवन-की क्रियाओंको थोड़ी देरके लिये रोक देना या ऐसी ही अन्य लोकोत्तर शक्तियाँ सुख, मोक्ष या पवित्रताका कोई पक्का प्रमाण नहीं"।

तात्पर्य यह है कि न तो शक्तियों—चाहे वह नैसर्गिक हो या अतिमानवीय—और न धन, सौन्दर्य या ज्ञानको आध्यात्मिकता माना जा सकता है।

हाँ, यह बात याद रखनी चाहिये कि यद्यपि ये चीजें आध्यात्मिकता नहीं हैं, फिर भी वे सब भगवान्‌हीसे मिलती हैं और भगवान्‌की अनन्त श्रीका ही नमूना हैं। जिसके पास ऐसी शक्तियाँ हैं और जो उनका समाज-कल्याणके लिये उपयोग करता है, वह सम्मानके योग्य है। विभूतियोगका तो अर्थ ही यही है।

देवी-देवताओंका दर्शन

हमारे यहाँ यह विचार बहुत प्रचलित है कि स्वप्न, समाधि या जाग्रत्-अवस्थामें संतों या देवताओंका दर्शन करने-वाला मनुष्य बहुत पवित्र होता है और जिसने भगवान्‌के दर्शन कर लिये, वह तो पूर्णताके शिखरपर पहुँच गया, वह कृतकृत्य हो गया तथा उसे अब और कुछ करना बाकी नहीं रहा। अगर यह बात सच होती तो ईसामसीहके सामने खड़े लोग

उन्हें गालियाँ न देते और उन्हें शूलीपर न चढ़ाते। इसी प्रका शिशुपाल और दुर्योधन, जिनकी कई बार कृष्णभगवान्से भें हुई तथा रावण और कुम्भकर्ण श्रीराम या अन्य देवताओंको देखते ही संत बन गये होते। जब प्राचीन ग्रन्थोंका अध्ययन बिना पूर्वाग्रहके करते हैं तब इस विश्वासका कोई आधार नहीं रह जाता कि केवल महात्माओंको ही देवी-देवताओंके दर्शनक सौभाग्य मिलता है और जिसे भी दर्शन हो गये वह अवश्य ही महात्मा बन गया।

महर्षि रमणका कहना है कि "लोग ईश्वर-दर्शनकी बा करते हैं, किंतु दृश्यका अलग-अलग चित्र खींचते हैं, जिसके बीच द्रष्टा स्वयं ही विद्यमान रहता है। सम्मोहक भी आपको ब अद्भुत दृश्य और घटनाएँ दिखा सकते हैं। उन्हें तो आप हाथक सफाई या बाजीगरी कहते हैं, किंतु देवताओंके दर्शनको अ दैवी या आध्यात्मिक मानकर सम्मानित करते है। सच्ची बा तो यह है कि सभी प्रकारके दृश्य अवास्तविक होते हैं, चा वे इन्द्रियोंसे, चाहे मनसे शुद्ध विचारके रूपमें देखे जायँ सच तो यह है····दर्शनका मूल्य उतना ही है जितना दृश्य का। तात्पर्य यह कि जिस स्तरका द्रष्टा होता है उसी स्तरक उसे दर्शन होता है।"

गीताने परम्परागत क्षणिक दर्शनोंकी सराहना न करके केवल उस स्थायी और विश्वरूपी दर्शनपर जोर दिया है, जिसमें सर्वत्र, हर समय और सब प्राणियोंमें परमात्मा दिखायी देता है—

"जो पुरुष सब भूतोंमें मुझे ही देखता है और सब भूतोंको मुझ वासुदेवके अंदर देखता है, उसके लिये मैं कभी ओझल नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता (६।३०)। जो पुरुष सब नाशवान् चराचर भूतोंमें अविनाशी परमेश्वरको समभावसे स्थित देखता है, वही (वास्तवमे) देखता है" (१३।२७)।

अपनेको भगवान्के सदृश बनाइये

जिस तरह किसी पदार्थके रासायनिक और औषधीय गुण उसके भौतिक गुणोसे बिल्कुल अलग होते हैं, उसी तरह मनुष्यके आध्यात्मिक गुण भी शक्ति, सुन्दरता, आकार और डीलडौलसे बिल्कुल अलग होते हैं। तो आखिर आध्यात्मिकता है क्या चीज ? थोडे शब्दोंमें कहा जाय तो आध्यात्मिकता है चरित्र, नेक बनना और नेकी करना। सदाचारके पौधेहीमेंसे साधुताके दिव्य पुष्प और फल निकलते हैं।

गीताने इस विषयपर अपना निर्णय दिया है और आध्यात्मिकता नापनेके लिये कई मापदण्ड बताये हैं। एक बात यह है कि भगवान्के दर्शन करना या उनके समीप बैठना काफी नहीं, उनके-जैसे गुणोको भी अपनाना आवश्यक है। भगवान्से साधर्म्य स्थापित करके मनुष्य मोक्ष और अमरताको प्राप्त कर लेता है (१४।२)।

दूसरी बात यह है कि हर-एकको उसी तरह काम करना चाहिये, जैसे परमात्मा करते हैं—कुशलतासे, अथक होकर और फिर भी निस्स्वार्थ भावसे। भगवान्के काम करनेका क्या ढंग है यह गीताके कई श्लोकोंसे स्पष्ट है—"यद्यपि मुझे तीनों लोकोंमें

कुछ भी कर्तव्य नहीं है तथा किंचित् भी प्राप्त होने योग्य वस्तु अप्राप्त नहीं है, तो भी मैं कर्म करता ही रहता हूँ" (३ । २२)। "गुण और कर्मोंके विभागसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र मेरे द्वारा रचे गये हैं, फिर भी उनके कर्ता मुझ अविनाशी परमेश्वरको तू अकर्ता ही जान; क्योंकि कर्मोंके फलमें मेरी स्पृहा नहीं रहती, इसलिये मुझे कर्म लिपायमान नहीं करते" (४ । १३-१४)।

दैवी गुणोंको ग्रहण कीजिये

भगवान्का प्रतिबिम्ब बननेके लिये यह आवश्यक है कि दैवी गुणोंको ग्रहण करके अपने चरित्रमें आत्मसात कर लिया जाय। गीताने एक पूरा अध्याय दैवी और आसुरी गुणोंके विभाजनपर लगाया है। दैवी सम्पदा मुक्तिके लिये और आसुरी सम्पदा बन्धनके लिये सहायक होती है (१६ । ५)।

दैवी गुणोंकी विशेषता यह है कि वे सब समष्टिरूप भगवान्की सेवा और प्रेमपर आधारित है। उनसे व्यक्ति समाजका उपयोगी और सर्वप्रिय सदस्य बन जाता है। आसुरी गुण जीते-जागते परमेश्वर, अर्थात् समस्त प्राणियोंको दुःख देते हैं और अहं-भावपर आधारित होते हैं, जैसे अभिमान, घृणा, लोभ इत्यादि। इनका मुख्य लक्षण होता है दूसरोंका शोषण, अपमानित और पराजित करना।

जो पुरुष शास्त्रोंके नैतिक आदेशोंका त्याग करके मनमाने ढंगसे आचरण करता है, वह धार्मिक साधनाओंके सारे लाभसे वंचित हो जाता है और न सुख, न सिद्धि, न परमगतिको प्राप्त

करता है (१६ । २३) । वास्तवमें उसकी आराधना तो आराधना ही नहीं (७ । १५) । आसुरी सम्पत्तिवालेमें सबसे नीच वे लोग हैं, जो अहंकार, बल, घमण्ड, कामना और क्रोधके वशीभूत हैं। ऐसे सबसे द्वेष करनेवाले, पापाचारी और क्रूरकर्मा लोग बारंबार आसुरी योनियोंको प्राप्त होते हैं (१६ । १८, १९) ।

प्रकृतिके तीन गुण

इस विषयकी एक अन्य ढंगसे भी व्याख्या की गयी है। जीवनके गुणात्मक पक्षको तीन श्रेणियोंमें बाँटा गया है और महत्त्वकी बात यह है कि उनका नाम ही तीन गुण—सत्त्व, रजस् और तमस् रखा गया है। सत्त्वसे मनुष्य ऊपरको उठता है, तमस्से अधोगतिकी ओर जाता है और रजस्से बीचहीमें चक्कर काटता रहता है (१४ । १८) ।

हर जगह यह धारणा फैली हुई है कि धार्मिक काम सदा सात्त्विक अर्थात् पवित्र, पावन और ऊपर उठानेवाले होते हैं। किन्तु हमारे शास्त्रोंके अनुसार ये और अन्य सारे काम भी तीन कोटियोंमें विभाजित किये जा सकते हैं। "पृथ्वीपर या स्वर्गमें अथवा देवताओंमें कुछ भी ऐसा नहीं, जो प्रकृतिसे उत्पन्न हुए तीनों गुणोंसे रहित हो" (१८ । ४०) ।

यह बात विशेष रूपसे ध्यान देने योग्य है कि गीताने पूजा, जप और ध्यानको तपस्याकी परिभाषाके अन्दर लानेके बाद (१७ । १४-१६) सारी तपस्याको तीन श्रेणियोंमें बाँट दिया है—सात्त्विक, राजसिक और तामसिक। धार्मिक कार्य सात्त्विक

तभी होते हैं, जब दूसरोंकी या समाजकी भलाईके लिये किये जायँ। अपने स्वार्थ, मान, बड़ाई, धन और वरदान पानेके लिये किये गये सारे धार्मिक कार्य राजसी होते हैं और उनसे मनुष्यका आत्मिक विकास नहीं होता। दूसरोंको दुःख देनेके लिये किये गये धर्म-कार्य तामस होते हैं और मनुष्यका पतन करते हैं (१७। १७–१९)।

भागवतके एक महावाक्यमें कृष्णभगवान्‌ने बताया है कि "जो भी काम मेरे लिये या फलेच्छा छोड़कर किये जाते हैं, वे सात्त्विक होते हैं। जो काम फलेच्छा रखकर किये जाते हैं, वे राजस होते हैं और जो परपीड़नके लिये किये जाते हैं, वे तामस होते हैं।" गीतामें भी यही बात दूसरे शब्दोंमें कही गयी है (१८। २३–२५)।

मानवमात्रकी प्रेमपूर्ण सेवा और कुछ नहीं, केवल व्यक्त या प्रकट परमेश्वरकी पूजा ही है। आराधनाका यह अनिवार्य अंग है। इसकी अवहेलना करनेके कारण हमलोग ढेर-के-ढेर राजसी और तामसी प्रकारके भक्त बनते जा रहे हैं। इसके अतिरिक्त पूजाकी विशेष पद्धतियों, पदार्थों और स्थानोंपर अत्यधिक जोर देनेके कारण पश्चिममें लाखों मनुष्य धर्मके नामपर मारे गये और हमारे देशमें हम अपने ही साथियोंको बिल्कुल भूल बैठे हैं।

निरपेक्षता आध्यात्मिकताकी कुंजी

पूर्वोक्त विवेचनसे यह आभास मिल गया होगा कि यदि आध्यात्मिकताको एक शब्दमें रखा जा सकता है तो वह शब्द

निस्स्वार्थता है। गीतामें बार-बार निष्कामकर्मपर बल दिया गया है, जिसका अर्थ है पुरुषार्थ करना; किन्तु स्वार्थपूर्ण इच्छाओंका त्याग करना। "जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओंको त्यागकर, ममता और अहंकारको छोड़कर, स्पृहारहित होकर रहता है वह शान्तिको प्राप्त होता है (२।७१)। ज्ञानीजन भी उसे पण्डित कहते हैं जिसके सारे काम कामना और संकल्पसे रहित हैं तथा जिसने ज्ञानकी अग्निसे कर्मोंको भस्म कर दिया है (४।१९)। जो पुरुष कर्मके फलको न चाहता हुआ करनेयोग्य कर्म करता है वह संन्यासी है, वही योगी है" (६।१)। उपनिषदोंके अनुसार जब हृदयकी सारी कामनाएँ त्याग दी जाती हैं तब मानव अमर बन जाता है और जीवनकालहीमें ब्रह्म बन जाता है।

कर्मफलत्यागनेका जो गीताका महत्त्वपूर्ण आदेश है वह आत्म-दान या स्वार्थ-त्यागकी क्रियाको पूरी कर देता है। फलकी इच्छा न करनेपर भी समय आनेपर उद्यमका फल वेतन या इनाम तो मिलता ही है। इस कमाईको भी जनता-जनार्दनकी सेवामें लगा देना चाहिये; उसका स्वयं उपभोग दूसरोंको बाँटकर ही करना चाहिये। यही कर्मफल-त्याग है और गीताके एक क्रान्तिकारी श्लोक (१२।१२) के अनुसार यह ध्यानसे भी श्रेष्ठ है और इससे तुरंत परम शान्ति मिल जाती है।

इससे यह न समझना चाहिये कि ध्यान, जप या भक्तिको छोड़-कर केवल कर्मफल-त्यागहीका आश्रय लेना है। कर्मफल-त्याग कोई ऐसी साधना नहीं जो ध्यान, जप या पूजाका स्थान ले सके। यह

तो सभी साधनाओंकी अन्तिम कड़ी है, उनकी उच्चतम कोटि और शिरमौर है। अन्य साधना तभी सात्त्विक बन सकती है जब उनके द्वारा प्राप्त किये हुए पुण्य तथा अन्य अच्छी चीजोंको समाजकी सेवामें अर्पित कर दिया जाय। जिस तरह रुका हुआ पानी सड़ने लगता है उसी तरह दुनियाकी अच्छी चीजें—जैसे धन, स्वास्थ्य, विद्या, यहाँ तक कि धार्मिक कार्योंद्वारा कमाया हुआ पुण्य भी—यदि सदुपयोगमें नहीं लायी जातीं तो आप-से-आप दुरुपयोगमें लगने लगती हैं। वे सबसे पहले अहंकार पैदा करती हैं और फिर अनाचारकी प्रेरणा देती हैं। यही कारण है कि तपस्या, दर्शन और वरदानके बलपर राक्षस राक्षससे महाराक्षस बन गया और फरिश्ते शैतान बन गये।

निःस्वार्थता या निःस्पृहता आध्यात्मिकताका रहस्य है और उसके लिये साधन है कर्मफल-त्याग, कर्मों या कर्तव्योंका त्याग नहीं, वरन् उनमें अहंता-ममताका, उनके फलोंकी लालसा और उनके फलोंका त्याग हो।

'त्यागका अर्थ क्या है?' स्वामी विवेकानन्दने पूछा। "यह कि धर्मका केवल एक ही आदर्श है, निःस्वार्थता। निःस्वार्थ बन जाना, पूर्णतः निःस्पृह हो जाना स्वयं मुक्ति है, क्योंकि इससे भीतरका आदमी तो मर जाता है और केवल भगवान् ही रह जाता है"। अन्य स्थानपर उन्होंने कहा कि "परमात्मा और शैतानमें अन्य किसी बातमें अन्तर नहीं, सिवा निःस्वार्थता और स्वार्थके····दूसरोंकी भलाईके काममें निरन्तर लगे रहकर हम अपने-आपको भूल जाने का प्रयत्न करते हैं, और अपने-आपको, अपने अहंको भूल जाना

एकमात्र बड़ा पाठ है जो हमें जीवनमें सीखना है—मानव-
नका सारा सार इस एक शब्दमे रखा जा सकता है—
'स्वार्थता'' ।

भगिनी निवेदिताकी भी यही सीख थी—'अनेक आत्माएँ
र उनके अनेक स्तर । सबके लिये एक ही मार्ग नहीं हो
ता । किंतु सभी पथोंके अंदर यह महान् नियम काम करता
कि केवल त्यागसे, अपनेको भूल जानेहीसे मनुष्य अपने परम
यकी ओर बढ़ता है·······आइये, हम किसी भी काममें लग
यँ, किंतु उसका उद्देश्य इतना महान् होना चाहिये कि हमें
त्म-विस्मरण करा दे । अपने अहंको भूल जाना ही तो
गवत्प्राप्ति है'' ।

स्वामी रामतीर्थका कहना है कि ''मनुष्य यदि भगवान्‌को
प्त करना चाहता है तो उसे उसका मूल्य चुकाना पड़ेगा और
ह मूल्य यह है कि अपने तुच्छ अहंभावको पूरी तरह मिटा
। ··· ·····अपना काम करके अपनी अहंताका बलिदान करो,
से भूल जाओ, तो अवश्य ही सिद्धिको प्राप्त कर लोगे'' ।

श्रीअरविन्दके शब्दोंमें—''अहंता उन ग्रन्थियोंमें सबसे भयंकर
जो हमें अज्ञानसे बाँधे रहती है ।······ समस्याका हल तभी
सकेगा, जब अपनी आध्यात्मिक उन्नति करके हम सब प्राणियोंसे
काकार हो जायँ, उन्हें अपने ही व्यक्तित्वका अंश समझें और
नसे इस प्रकार व्यवहार करें मानो वे हमारे ही अन्य स्वरूप हैं'' ।

यह बात समझमें भी आती है। मनुष्यका अहं ही जीवात्माको परमात्मासे अलग रखता है। यदि अहंकी दीवार हटा दी जाय, पतली कर दी जाय या पारदर्शी बना दी जाय, तो मनुष्य तुरंत ही परमात्मा, प्रकृति और सब प्राणियोंसे अपनी एकताका अनुभव करने लगेगा और यही सारी साधनाओंका लक्ष्य है।

आजके बड़े-से-बड़े विचारक भी मानवमात्रके लिये स्वेच्छापूर्वक, निःस्वार्थ श्रमसे अच्छा कोई आदर्श नहीं बता सकते। उदाहरणार्थ—आयन्स्टाइनका कहना है कि "मेरे विचारमें धार्मिक दृष्टिसे प्रबुद्ध वही मनुष्य है जिसने यथाशक्ति अपनेको अपनी स्वार्थपूर्ण इच्छाओंसे मुक्त कर लिया है"।

जैसा कि स्वामी अमितानन्दजीने समझाया—मनुष्यके आध्यात्मिक विकासका क्रम इस प्रकार चलता है—पुरुषार्थ, परार्थ, परमार्थ। मनुष्यका परिश्रम जैसे-जैसे परार्थकी ओर बढ़ता है, उसका सारा जीवन परमार्थकी ओर प्रगति करता जाता है।

पूर्णताके भेद

गीताके अनुसार पूर्णता, मोक्ष और परमेश्वरकी प्राप्ति किसी विशेष काम करनेसे नहीं, बल्कि सभी काम अनासक्त होकर करनेसे (३। १९), सभी प्राणियोंमें व्याप्त परमात्माकी पूजा समझकर करनेसे (६। ३१) या भगवान्को भेंट करनेसे (९। २७-२८) होती है। गीताके अन्तिम अध्यायमें श्रीकृष्णका स्पष्ट आश्वासन है (१८। ४५, ४६)। कोई भी व्यक्ति अपने व्यावसायिक कर्तव्योंको (जो पिछले ती

श्लोकोंमें अतिसंक्षेपमें बताये गये हैं) दक्षतासे करके परम सिद्धिको प्राप्त कर लेता है।

भगवत्प्राप्तिका एक अर्थ है पूर्ण हो जाना। किंतु पूर्णताका ठीक-ठीक क्या अर्थ है? क्या विभिन्न प्रकारके पुरुष—जैसे डाक्टर, वकील, इंजीनियर, अध्यापक और सिपाही—पूर्ण हो जानेपर बिल्कुल एक-से समान रुचि और समान योग्यतावाले बन जाते हैं या उनकी पूर्णतामें कुछ अन्तर रहता है।

गीताने इस बातपर बार-बार जोर दिया है कि प्रत्येक पुरुषको उसके स्वभावजनित गुणोंके अनुरूप कर्तव्य बाँटे गये हैं। अतः अपने कामको सुचारु ढंगसे सम्पन्न करके वह अपने स्वभाव और शक्तियोंको सुसंस्कृत और संवर्द्धित तो कर सकता है, किंतु किसी अन्य व्यक्तिके स्वभाव और गुणोंको नहीं प्राप्त कर सकता। क्या एक डाक्टर सिद्धि प्राप्त कर लेनेपर आप-से-आप वेदोंका पण्डित, अजेय योद्धा और कुशल उड़ाका बन जाता है? क्या यह मानना अधिक तर्कसंगत नहीं कि प्रत्येककी पूर्णता उसीके स्वभाव और शक्तियोंकी पूर्णता है और इसलिये दूसरोंकी पूर्णतासे सदा भिन्न रहती है?

इन प्रश्नोंका उत्तर केवल तर्कके आधारपर देनेके सिवाय हम जीवन्मुक्तोंको मिली हुई योग्यताओंपर विचार करेंगे। यह सभी मानते हैं कि मनुष्य मरनेके बाद वैसा ही रहता है जैसा जीवन-कालमें था। इसलिये जीवन्मुक्तोंकी योग्यताओंको ही पूर्णताकी चरम सीमा मानना पड़ेगा। वास्तवमें कोई भी दो जीवन्मुक्त योग्यता तथा स्वभावमें एक समान नहीं थे। उनमेंसे कोई भी सर्वव्यापी,

सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वगुणसम्पन्न या शाश्वत सुखमें आसीन नहीं दिखायी देता था। उनमेंसे कोई भी ऐसा नहीं था जिसने जीवनमुक्त बननेके बाद संसारकी सभी भाषाओं, ज्ञान-विज्ञान और कलाओंपर अधिकार प्राप्त कर लिया हो।

इससे तात्पर्य यह निकलता है कि किसी व्यक्तिविशेषकी पूर्णता उसीके क्षेत्र और गुणोंतक सीमित रहती है। केवल परम-पुरुष परमेश्वरकी पूर्णता सार्वभौम सर्वतोन्मुखी और सर्वगुणसम्पन्न होती है।

इस प्रश्नपर एक और ढंगसे भी विचार किया जा सकता है। जब हम सत्यकी खोज करते हैं तो क्या किसी ऐसे प्रकाश-बिन्दुतक पहुँचनेका प्रयास करते हैं जिसमें लंबाई, चौड़ाई और मोटाई कुछ भी नहीं? या यह मानना ज्यादा ठीक है कि परमात्माका तेज एक असीम महल है जिसमें प्रवेश करनेके लिये हर एक अपना अलग द्वार चुन सकता है और जिसके अंदर पहुँचकर वह अपना विशिष्ट स्थान ग्रहण कर सकता। हम यह स्वीकार करते हैं कि भगवान्‌तक पहुँचनेके अनेक मार्ग हैं। क्या हम यह भी नहीं मान सकते कि त्माकी ही अनन्त श्रेष्ठताके भीतर हर व्यक्तिका अपना अलग व्य स्थान भी है?

अगर हम इस बातको मान लें कि मुक्त पुरुष भी केवल अपने विशेष क्षेत्रमें पूर्ण होता है, तो धर्म बड़ा सरल और लोक-तान्त्रिक बन जायगा। जब सभी कामोंसे भगवान्‌की प्राप्ति हो सकेगी तो एक पूजा-विधि या व्यवसायको छोड़कर दूसरेको

अपनानेकी, सांसारिक कामोंको तजकर धार्मिक कामोंको अपनानेकी या गृहस्थीको छोड़कर संन्यास लेनेकी कोई जरूरत ही नहीं रहेगी।

अपील

जनसाधारणमें यह विचार फैला हुआ है कि समाधि, भगवद्-दर्शन और मोक्षकी कामना शुद्ध आध्यात्मिक या पारलौकिक है और इसलिये स्वार्थी नहीं है, सात्त्विक है। किंतु यह तर्क सही नहीं; क्योंकि जो कुछ भी केवल अपने लिये है वह स्वार्थपरता है। निःस्वार्थ केवल वही है जो सबकी भलाईके लिये हो।

गोस्वामी तुलसीदासजीके अनुसार सच्चे भक्तके लिये स्वर्ग, नरक और मोक्ष एक समान हैं—

सरगु नरकु अपबरगु समाना। जहँ तहँ देख धरें धनु बाना॥
करम बचन मन राउर चेरा। राम करहु तेहि के उर डेरा॥
जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु।
बसहु निरंतर तासु मन सो राउर निज गेहु॥

स्वामी विवेकानन्दने भी इसी बातको बिल्कुल स्पष्ट करके कहा है—"याचना करना प्रेमकी भाषा नहीं। भगवान्‌की भी पूजा, मोक्ष या किसी अन्य पुरस्कारके लिये करना उतना ही नीच कार्य है"। और भी जोरदार शब्दोंमें उन्होंने बताया कि "अगर तुम अपना ही मोक्ष चाहते हो तो नरकमें जाओगे। तुम्हें तो दूसरोंके मोक्षके लिये प्रयत्नशील होना चाहिये"।

हमे भागवतमें श्रीकृष्णके कहे हुए इन शब्दोंसे प्रेरणा लेनी चाहिये—

सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वगुणसम्पन्न या शाश्वत सुखमें आसीन नहीं दिखायी देता था। उनमेंसे कोई भी ऐसा नहीं था जिसने जीवनमुक्त बननेके बाद संसारकी सभी भाषाओं, ज्ञान-विज्ञान और कलाओंपर अधिकार प्राप्त कर लिया हो।

इससे तात्पर्य यह निकलता है कि किसी व्यक्तिविशेषकी पूर्णता उसीके क्षेत्र और गुणोंतक सीमित रहती है। केवल परम-पुरुष परमेश्वरकी पूर्णता सार्वभौम सर्वतोन्मुखी और सर्वगुणसम्पन्न होती है।

इस प्रश्नपर एक और ढंगसे भी विचार किया जा सकता है। जब हम सत्यकी खोज करते हैं तो क्या किसी ऐसे प्रकाश-बिन्दुतक पहुँचनेका प्रयास करते हैं जिसमें लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई कुछ भी नहीं ? या यह मानना ज्यादा ठीक है कि परमात्माका तेज एक असीम महल है जिसमें प्रवेश करनेके लिये हर एक अपना अलग द्वार चुन सकता है और जिसके अंदर पहुँचकर वह अपना विशिष्ट स्थान ग्रहण कर सकता। हम यह स्वीकार करते हैं कि भगवान्तक पहुँचनेके अनेक मार्ग हैं। क्या हम यह भी नहीं मान सकते कि परमात्माकी ही अनन्त श्रेष्ठताके भीतर हर व्यक्तिका अपना अलग स्थान भी है ?

अगर हम इस बातको मान लें कि मुक्त पुरुष भी केवल अपने विशेष क्षेत्रमें पूर्ण होता है, तो धर्म बड़ा सरल और लोक-तान्त्रिक बन जायगा। जब सभी कामोंसे भगवान्की प्राप्ति हो सकेगी तो एक पूजा-विधि या व्यवसायको छोड़कर दूसरेको

अपनानेकी, सांसारिक कामोंको छोड़कर धार्मिक कामोंको अपनानेकी या गृहस्थीको छोड़कर सन्यास लेनेकी कोई जरूरत ही नहीं रहेगी।

अपील

जनसाधारणमें यह विचार फैला हुआ है कि समाधि, भगवद्-दर्शन और मोक्षकी कामना शुद्ध आध्यात्मिक या पारलौकिक है और इसलिये स्वार्थी नहीं है, सात्त्विक है। किंतु यह तर्क सही नहीं; क्योंकि जो कुछ भी केवल अपने लिये है वह स्वार्थपरता है। निःस्वार्थ केवल वही है जो सबकी भलाईके लिये हो।

गोस्वामी तुलसीदासजीके अनुसार सच्चे भक्तके लिये स्वर्ग, नरक और मोक्ष एक समान हैं—

सरगु नरकु अपबरगु समाना। जहँ तहँ देख धरें धनु बाना॥
करम बचन मन राउर चेरा। राम करहु तेहि के उर डेरा॥
जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु।
बसहु निरंतर तासु मन सो राउर निज गेहु॥

स्वामी विवेकानन्दने भी इसी बातको बिल्कुल स्पष्ट करके कहा है—"याचना करना प्रेमकी भाषा नहीं। भगवान्‌की भी पूजा, मोक्ष या किसी अन्य पुरस्कारके लिये करना उतना ही नीच कार्य है"। और भी जोरदार शब्दोंमें उन्होंने बताया कि "अगर तुम अपना ही मोक्ष चाहते हो तो नरकमें जाओगे। तुम्हें तो दूसरोंके मोक्षके लिये प्रयत्नशील होना चाहिये"।

हमें भागवतमें श्रीकृष्णके कहे हुए इन शब्दोंसे प्रेरणा लेनी चाहिये—

"सब प्राणियोंमें केवल उन्हींका जीवन सार्थक है जो अपने जीवन, धन, ज्ञान और वचनद्वारा दूसरोंकी भलाई करते हैं"।

"पहाड़से यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि तुम्हारे सारे काम दूसरोंकी भलाईके लिये हों और तुम्हारा सारा जीवन दूसरोंके लिये हो"।

"पेड़से यह शिक्षा लो कि तुमको सदा दूसरोंकी सेवाके लिये तैयार रहना चाहिये"।

श्रीकृष्णके इसी उपदेशकी प्रतिध्वनि आधुनिक युगके महान् वैज्ञानिक आयन्स्टाइनके इन शब्दोंमें मिलती है—"मनुष्य यहाँ (संसारमें) दूसरे मनुष्योंके लिये है।"

आध्यात्मिकताका विकास करनेके लिये हमें अपने अहंको विकेन्द्रित करना चाहिये और सार्वभौमिक बनाना चाहिये, जिससे व्यक्तिका समष्टिसे एकीकरण हो जाय और मनुष्य दूसरोंके दुःख-सुखको अपने दुःख-सुखके समान ही महसूस करने लगे। इसके लिये स्वर्गमें रहनेवाले अदृश्य भगवान्‌की पूजा तो करनी ही चाहिये; किंतु अपने जीवनको दैवी गुणोंसे अलंकृत करके और सेवापरायण बनाकर चलते-फिरते प्रत्यक्ष देवताओंकी सेवाद्वारा पूजा करना भी परमावश्यक है।



मानवका आध्यात्मिक उत्थान

बहुत-से लोग अपने धर्मकी सफलता उसके अनुयायियोंकी संख्यासे या इस बातसे नापते हैं कि उसमें कितने लोग अपना धर्म छोड़कर शामिल हुए या कितने नये चेले बने, उसके मन्दिरों, मस्जिदों या गिरजाघरोंमें कितनी उपस्थिति रही, कितने नये मन्दिर, मस्जिद, गिरजाघर, मठ, आश्रम या अस्पताल बनाये गये या वर्ष-भरमें कितना धार्मिक साहित्य तैयार या वितरित किया गया। निसंदेह यह सब काम समाजको लाभान्वित करते हैं, धर्मका प्रचार करते हैं और उसे जीवित रखते हैं।

परन्तु यह सब साधनमात्र है, साध्य नहीं। धर्मका असली उद्देश्य उसकी भावनाको जनसाधारणके हृदयमें प्रविष्ट कराना और उनके जीवनमें गुणात्मक सुधार लाना है। धर्मकी सफलता इसीमें है कि वह नरको नारायण, मनुष्यको देवता, जीवन-मुक्त या आदर्श मनुष्य बनाये; जो सर्वहितकारी या प्रकाशस्तम्भ हों। ऐसे मनुष्यके लिये पूर्ण होना आवश्यक नहीं बल्कि यह है कि दिन-प्रति-दिन अपनेको पहलेसे अधिक अच्छा बनानेका प्रयास करते रहें। इस प्रकारके विकासको कुछ विद्वानोंने दैवीकरणकी और कुछने Humanization मानवीकरणकी संज्ञा दी है।

आदर्श पुरुष और महापुरुष

धर्मका काम है कि बड़ी संख्यामें लोगोंको आदर्श मानव बनाये और साथ-साथ हर क्षेत्रमें अनेक विभूतियाँ या महापुरुष भी

पैदा करें—महान् शिक्षक, वैज्ञानिक, प्रशासक, उद्योगपति, राजनीतिज्ञ, विचारक, नेता और साधु-संत, जो हमारी संस्कृतिको और ऊँचे स्तरतक उठा सकें। हर धर्मवान् व्यक्तिका कर्तव्य है कि अपनेको आदर्श पुरुष बनाये और अपनी शक्तियोंका पूरा-पूरा विकास करे—विशेषकर अपनी उस योग्यताका जिसमें वह धनी है—ताकि देशकी उत्तम सेवा हो सके।

मानवका नवनिर्माण इसलिये और भी आवश्यक हो गया है कि यथेष्ट नैतिक बलके बगैर वह विज्ञानप्रदत्त शक्तियों और सुविधाओंका दुरुपयोग करके विनाशकी ओर न बढ़ जाये।

हमारे शास्त्रोंमें आदर्श पुरुष या सज्जनके लक्षणोंका वर्णन जगह-जगहपर मिलता है। श्रीकृष्णद्वारा भागवतमें बताया गया एक विवरण यह है—"जो दूसरोंका दुःख सहन नहीं कर सकता, जो दूसरोंको कष्ट नहीं देता, जो सबकी ओर सहनशील है, सत्य ही जिसका बल है, जो निष्कलंक है, सम है, सबका सहायक है, जिसका मन वासनाओंसे कलुषित नहीं है, जो जितेन्द्रिय है, जो मृदु, पवित्र, अपरिग्रही है, जो दूसरोंसे सम्मानकी आशा नहीं रखता, जो सबको आदर देनेको तत्पर है, जो केवल करुणाहीसे प्रेरित होकर काम करता है, जो उत्तम दृष्टिवाला है, जो सारे काम मुझको अर्पण करता है और जो मुझे, अर्थात् परमात्माके साथ-साथ समष्टिको भी पूजता है—वास्तवमें वही सर्वश्रेष्ठ पुरुष है।"

यद्यपि धर्मोंका चलन हजारों वर्षसे है, आदर्श मानव और आदर्श समाज बनानेका ध्येय हमसे अब भी दूर है। इसका

ण यह है कि अपने अनुयायियोंको सात्त्विक या नेक बनानेमें को दिलचस्पी है ही नहीं, वह तो उन्हे शीघ्रातिशीघ्र मोक्ष ाना चाहता है—वह चाहे जैसे भी हो। सच तो यह है संसारमें सर्वत्र परम्परागत धर्मोंकी यही कोशिश रही है कि लघु उपाय और मन्त्र खोज निकाले जायँ जिनके द्वारा अपनेको ारे वगैर मनुष्य भगवान्‌को प्रसन्न कर सके।

उदाहरणार्थ हिंदू-समाजमे यह धारणा फैली हुई है कि र्मिक काम सारे पापोको भस्म कर डालते हैं और मोक्ष लाते हैं, धार्मिक कामोसे ही यह सम्भव है और दूसरे प्रकारके म समयकी बरबादी और मोक्षप्राप्तिमें बाधक हैं। ईसाई-धर्म और भी सस्तेमें मोक्ष दिलवानेका वादा करता है—केवल ासमसीहमें विश्वास लाना ही मोक्षप्राप्तिके लिये काफी है। ाने मनुष्यकी अगली, पिछली और वर्तमान सभी पीढियोंके पाप पने ऊपर ले लिये हैं, इसलिये मनुष्य चाहे कितना ही पापी क्यों हो, ईसामें विश्वास करते ही बिल्कुल निष्पाप और पवित्र बन ाता है। दुष्कर्मोंसे बचने और सत्यकार्योंको करनेकी कोशिश- कोई लाभ नहीं, क्योंकि मुक्ति केवल ईसामसीहमें विश्वास ानेसे ही मिल सकती है और उसके बिना कदापि नहीं।

टाल्स्टायका कहना है—"यदि मनुष्य किसी उद्धारक ार्थना या अन्य धार्मिक क्रियाओंद्वारा मोक्ष पा सकता है तो उसे च्छे काम करनेकी कोई आवश्यकता नहीं। एक बाहरी पूजापर ाधारित धर्म और सत्य तथा सदाचारके सेवन आपसमें मेल नहीं ाते, सामान्यतः एक दूसरेका अपवर्जन करता है।"

आत्म-गठन

वास्तवमें चरित्र-निर्माणका अर्थ है अपना गठन, जिसके लिये मुख्यतः तीन प्रकारके पुरुषार्थकी आवश्यकता होती है—तैयारी, पूजा और सेवा। जीवनके आरम्भिक कालमें मनुष्यको चाहिये कि अपने शरीरको स्वस्थ और सबल बनायें, बुद्धिको शिक्षित करे, उपयोगी ज्ञानका उपार्जन करें, और किसी उद्यमके लिये अपनेको सुयोग्य बनावें। इसी तरह प्रत्येक दिनका कुछ भाग उस दिनके कामके लिये तैयार होनेमें लग जाता है। निद्रा, विश्राम तथा मनोरञ्जन तैयारीहीके अन्तर्गत आते हैं।

व्यावहारिक कामोंको दो भागोंमें बाँटा जा सकता है, अर्थात् पूजा और सेवा। आराधना तथा दूसरे धार्मिक काम मनुष्यके सुख और विकासके लिये आवश्यक हैं। यह सब उस मनुष्यकी बड़ी सहायता करते हैं जो सच्चे दिलसे अपना सुधार करनेमें लगा हो। इन कामोंका सबको, विशेषकर उन लोगोंको जिनके पास अवकाश है, लाभ उठाना चाहिये। रामायण, महाभारत तथा गीता-जैसे लोकप्रिय ग्रन्थोंके अध्ययन और पूजा-प्रार्थनामें कुछ समय प्रत्येक दिन लगानेकी आदत बालपनमें ही डाल लेनी चाहिये।

प्रत्येक मनुष्यको अपने लिये साधना विशेषको चुनने और उसकी मात्रा निश्चित करनेकी स्वतन्त्रता होनी चाहिये। सामान्य नियम तो यह है कि अपने लिये वही साधना सर्वाधिक लाभकारी होगी जिसमें अपना मन लगता हो। जो साधना किसी दूसरेके लिये उपयोगी सिद्ध हुई है, जरूरी नहीं कि आपके लिये भी उपयोगी हो। यहाँपर यह चेतावनी दे देना आवश्यक है कि

पूजाकी किसी पद्धति, पदार्थ या स्थलके लिये दुराग्रह, जो पाश्चात्य धर्मोंकी खासियत है; अतीतमे भयकर युद्ध और खून-खराबा करा चुका है और आज भी दुनियाको लड़ानेवाली प्रमुख शक्तियोमें है।

पूजासे पहले और बाद मनुष्यको उन दूसरे कामोमे लग जाना चाहिये जो जीविकोपार्जन और जीवनरक्षणके लिये आवश्यक है। इन जिम्मेदारियोको वह कैसे निभाता है यह परम महत्त्वकी बात है।

आदर्श पुरुषको अपने जीवनके लौकिक और पारलौकिक दोनो ही पक्षोकी देखभाल करनी चाहिये। आदर्श समाजको केवल सच्चे भक्तो, ध्यानी और साधुओकी ही नहीं वरन् बडी सख्यामे आदर्श पुत्र और पुत्री, आदर्श विद्यार्थी, आदर्श गृहस्थ, आदर्श माता-पिता, आदर्श नागरिक, आदर्श सेवानियोजक और आदर्श कर्मचारी, आदर्श उद्योगपति, राजनीतिज्ञ, आदर्श धर्माचार्य और धर्मनेता—वरन् सभी क्षेत्रोमे बडी सख्यामे आदर्श पुरुषोंकी आवश्यकता है। इसलिये एक सुखी तथा सुव्यवस्थित समाज बनानेके लिये हमें आराधना तो सिखानी ही चाहिये; साथ-साथ सयम, नैतिकता, कर्तव्यनिष्ठा और मानवमात्रकी सेवापर भी पूरा जोर देना चाहिये।

सच तो यह है कि लौकिक कार्य व्यक्त या प्रकट भगवान्की पूजा हैं। वह न केवल जीवनको बनाये रखने वरन् उसके आध्यात्मिक विकासके लिये भी नितान्त आवश्यक है। पूरा हिसाब लगानेपर पता चलता है कि लौकिक कार्योंसे ही धार्मिक कार्योंका आध्यात्मिक मूल्यांकन हो सकता है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, धार्मिक काम तभी सात्त्विक या कल्याणकारी बन सकते है जब वह तथा दूसरे काम सबकी भलाईके

लिये किये जायँ। ध्यानके फलका त्याग कर देना ध्यानसे श्रेयस्कर है। यदि कोई मनुष्य दूसरोंका अपमान करता है तो उसकी पूजा नहीं हो सकती। और जो दूसरोंकी भलाईके लिये प्रयत्न नहीं करता वह व्यर्थ ही जीता है, उसे लोक या परलोकमें कहीं भी सुख नहीं मिल सकता।

तीन प्रकारके सांसारिक काम

सांसारिक काम, जो समाजका अनुरक्षण करते हैं, तीन प्रकारके होते हैं। सर्वप्रथम स्नेहका परिश्रम है, जो घरोंमें किया जाता है। आध्यात्मिकताका श्रीगणेश परिवारमें होता है। जिस प्रेमसे माता-पिता अपने बच्चोंका पालन-पोषण करते हैं वह भगवान्‌की आँखोंमें कितना मूल्यवान् और पवित्र होता है, इसका अनुमान इससे लगता है कि हमारे धर्मग्रन्थोंमें आदेश है कि माता-पिताको देवतुल्य समझो।

दूसरे प्रकारके कृत्य दानके कृत्य हैं। इनका आध्यात्मिक मूल्य काफी है। दान-कृत्योंका मूल्य तब और भी बढ़ जाता है जब वे निःस्वार्थभावसे और अपने पसीनेकी कमाईसे किये जाते है।

दान-कृतियोंके कुछ पहलुओंपर ध्यान देना आवश्यक है। भिखारियोंको दान देना अच्छा है, पर भिखारियोका अस्तित्व गरीबी और भूखका द्योतक है। यह दोनों समाजके लिये कलंक है। इस समस्याका हल फकीरोको टुकड़ा डालकर नहीं हो सकता। इसके लिये तो यह आवश्यक है कि देशका आर्थिक विकास हो और सबको काम मिले।

दानके धनपर निर्भर रहनेवालोंको दूषित धनके खतरोंसे सावधान रहना चाहिये। बेईमानीके धनका बराबर प्रयोग करनेसे विवेक विकृत, दृष्टि सीमित और बुद्धि मन्द हो जाती है। महाभारतमें यह बात स्पष्ट रूपसे बतायी गयी है। धृतराष्ट्रका अन्न खानेके कारण महाभारत-युद्धमें भीष्मने दुर्योधनका पक्ष लिया, यद्यपि वह जानते थे कि दुर्योधन अन्याय कर रहा था। एक अन्य कथामें है कि एक पुण्यात्मा ब्राह्मण मन्त्रीने एक बेईमान पुरुषके यहाँ भोजन किया। उसके बाद वह राजमहलमें गया और रानीका एक कण्ठहार चुरा लिया। कुछ दिन बाद, जब अशुद्ध भोजनका प्रभाव जाता रहा, उसकी सुबुद्धि लौट आयी, तब उसने कण्ठहारको क्षमायाचनाके साथ लौटा दिया।

हमारी आजकलकी अर्थ-व्यवस्थामे बडे-बडे चन्दे काले धनसे आते है। इस कारण राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा अन्य बड़ी-बडी संस्थाओका जो दान स्वीकार करती है, दोहरा प्रभाव पड़ता है। वह जनताका कुछ भला तो अवश्य करती है, पर क्योंकि वह काले धनको सफेद कर देती है और दानकर्ताओको यश दिलाती है, परोक्षरूपसे वह भ्रष्टाचार, चोरबाजारी तथा धनार्जनकी अन्य असामाजिक क्रियाओको प्रोत्साहित भी करती है। ऐसी संस्थाओकी इच्छा अनवरत धनप्राप्तिकी अधिक होती है और भ्रष्टाचार रोकनेकी कम। इससे भी बुरी बात यह है कि ऐसे दानपर निर्भर करनेवाले अधिकांश लोग स्वय ईमानदार होते हुए भी भ्रष्टाचारके मूकदर्शक और समर्थक बन जाते है।

जीविकोपार्जनके कार्य

तीसरे प्रकारके सांसारिक काम समाजके लिये आवश्यक सामान और सेवाओंका उत्पादन करते हैं। जीविकोपार्जनके लिये सच्चा परिश्रम ही धर्मकी नींव है। यही शारीरिक, मानसिक और नैतिक स्वास्थ्यका सर्वोत्तम रक्षक है, चरित्रका सर्वश्रेष्ठ निर्माता है और जीवनके अधिकांश सुखोंका स्रोत है।

यह आपत्ति की जा सकती है कि वेतनके बदले किया गया श्रम निःस्वार्थ नहीं है और इसलिये इसे न तो ईश्वरकी आराधना और न आध्यात्मिक विकासका साधन माना जा सकता है। यह आपत्ति तर्कसंगत नहीं है, क्योंकि धार्मिक सेवाओंके लिये भी किसी-न-किसी रूपमें व्यय करना पड़ता है, और धर्माचार्योंकी भी देख-भालकी आवश्यकता होती है सेवाकार्योंके बदले उचित पारिश्रमिक ले लेनेसे उनका आध्यात्मिक मूल्य कम नहीं हो जाता। धन स्वयं बुरी चीज नहीं है, बुरा तो वह तब हो जाता है जब उसे कमाने और खर्च करनेमें गलत तरीकोंको अपनाया जाय।

मनुष्यके आध्यात्मिक विकासमें व्यावसायिक कार्योंकी महत् सम्भावनाओं और निर्णायक भूमिकाके बारेमें बहुत कम लोगोंको भान है, किंतु संसारके अधिकांश पाप इन्हीं व्यावसायिक कार्यों के बीच और इन्हींके कारण होते हैं। जीवनके इस क्षेत्रमें जबतक आचार-व्यवहारके उच्चतम मानदण्ड लागू नहीं किये जाते, तबतक मनुष्य या संसारके नवनिर्माणकी कोई आशा नहीं की जा सकती।

अपने व्यवसायके विचार, आकाक्षाएँ और काम हमारे जीवनपर छाये रहते है, इसलिये व्यवहारमे हमारे आचार-व्यवहार जितने उच्च होंगे और जितनी शुद्ध हमारी कमाई होगी उतनी ही उच्च और पवित्र हम बन सकेंगे।

स्वधर्मके नियमके अनुसार मनुष्य अपना व्यावसायिक काम सम्यक् रूपसे करके ईश्वरकी सच्ची आराधना करता है। स्वधर्मकी परिभाषामे प्रथम स्थान व्यावसायिक कार्योंका है। अन्य कार्योंका स्थान बादमे आता है। और ऐसे कार्य यदि व्यावसायिक कर्तव्योंका विरोध करे तो हानिकारक भी हो सकते है। जिन लोगोंने धर्मको अपना पूर्णकालिक पेशा बना लिया है उनके लिये धार्मिक और व्यावसायिक कर्तव्य एक ही होते है। अन्य लोगोके लिये भी व्यावसायिक कर्तव्य, यद्यपि वह मुख्यरूपसे लौकिक होते है, प्राथमिकता रखते है। इस बातकी पुष्टि इससे होती है कि गीताने चारो व्यावसायिक वर्गोंके कर्तव्योंका वर्णन करते हुए ब्राह्मणोके लिये धार्मिक कर्तव्य और अन्य लोगोके लिये सांसारिक कर्तव्य बताये है। मनुस्मृतिमे शासकोंके लिये यह बात बहुत स्पष्टरूपसे कही गयी है—"राजा या गणपतिको हर समय राज्यके कार्योंमे लगा रहना चाहिये। शासकका प्रमुख कर्तव्य है निशिवासर राजकाजमे तल्लीन रहना और कहीं कोई गड़बड़ी न होने देना। यही उसकी पूजा-पाठ है और यही उसके लिये योग है!"

गीताने कहा है कि दूसरेके कर्तव्यको अपनाना खतरनाक है। गीताका यह उपदेश उन लोगोंके लिये एक चेतावनी है

जो मानते हैं कि मोक्ष तभी मिलेगा जब सांसारिक कार्योंको त्यागकर धार्मिक कामोंमें लगे, जो कि वास्तवमें उन्हीं लोगोंके लिये भगवत्प्राप्तिका मार्ग है जिन्होंने धार्मिक कृत्योंहीको अपना धन्धा अर्थात् जीविकाका साधन बना लिया है। विद्यार्थी अध्ययनमें मन न लगाकर राजनीतिमें भाग लें, प्रशासक और राजनीतिज्ञ धन कमानेमें लगे रहें—ये भी "पर-धर्मानुसरण" के दृष्टान्त हैं।

आमतौरपर समझा जाता है कि मोक्ष-प्राप्तिके लिये पूजा-अर्चनाके बाद दान-पुण्यका महत्त्व है। किंतु सच्ची बात यह है कि यह दोनों प्रकारके कामोंका लोकसंग्रहमें बहुत कम योगदान है। लोकसंग्रहका सुदृढ़ आधार व्यावसायिक कार्य है जो वेतन लेकर किये जाते हैं। धर्म और दानके लिये धन आवश्यक है और धन व्यावसायिक कार्योंसे ही प्राप्त किया जा सकता है। व्यावसायिक कार्योंसे शरीररक्षा होती है जिसके बिना आध्यात्मिक विकास असम्भव है। स्पष्ट है कि यदि व्यावसायिक कार्योंकी, जो जीवन, सभ्यता और आध्यात्मिकताके मूलमें हैं, समुचित महत्त्व दिया जाय और उनका सही ढंगसे पालन-पोषण किया जाय तो आध्यात्मिकताका वृक्ष अवश्य पल्लवित होगा और अच्छे एवं सुन्दर फूल-फलोंसे लद जायेगा।

आराधनाका सर्वोत्तम स्वरूप

यह स्वतः सिद्ध है कि सर्वोत्तम आराधनासे ही सर्वोत्कृष्ट मनुष्य आदर्श व्यक्ति और महामानव बन सकते हैं। भागवतके अन्तमें श्रीकृष्णने इन सुन्दर शब्दोंमें आराधनाका सर्वोत्कृष्ट स्वरूप बताया है—

"मुझे सब भूतोंमें विद्यमान समझे और उसके अनुरूप उनसे मन, वचन और कर्मद्वारा व्यवहार करे—यही सबसे अच्छी आराधना है।"

इस प्रकारकी आराधनाकी कुछ विशेषताएँ और तात्पर्य नीचे दिये जाते हैं।

इस पूजामे धार्मिक और लौकिक कर्म, पूजा, धर्म और सेवाधर्म दोनो ही सम्मिलित है। इसमें सब प्रकारके योगोंका समावेश है।

यह पूर्णकालिक—नित्य या सतत—योग है जिससे पूजा-कालमें ही नहीं वल्कि हर समय ईश्वरमिलन होता है।

यह वहुमुखी योग है जिसके लिये ईश्वरकी पूजा केवल मन और विचारसे ही नहीं वल्कि वाणी और कर्मसे भी करना आवश्यक है।

इस पूजाके मुख्य आशय है—

सर्वश्रेष्ठ योगी वह है जो दूसरोके सुख-दुःखको अपने सुख-दुःखके समान ही जानता है (६ । ३२)।

जो पुरुष सबमें परमेश्वरको और सबको परमेश्वरके अन्तर्गत देखता है, वह सदा भगवान्का दर्शन करता रहता है (६ । ३०)।

प्रत्येक मनुष्यको सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें रत रहना चाहिये (५ । २५)।

सारे काम—चाहे वह धार्मिक हों या लौकिक—भगवान्की अर्थात् संसार या समष्टिकी भेंट समझकर करने चाहिये (९ । २७)।

पूजा, जप और ध्यान करनेके वाद मनुष्यको सेवा और परोपकारके कामोंमें लग जाना चाहिये, जिससे कि कमाया हुआ

पुण्य तथा दूसरी अच्छी चीजें गरीबों और जरूरतमन्दोंको समर्पण की जायँ।

यद्यपि यह पूजा हर समय और हर जगह की जानी चाहिये, इसका सबसे उपयुक्त समय शान्ति और एकान्तमें नहीं वरन् वह है जब आदमी अपने व्यावसायिक कार्य करता है और अनेक लोगोंके सम्पर्कमें आता है। अपना काम धीरे-धीरे करके वह लोगोंको परेशान कर सकता है या दक्षता और तत्परतासे करके उनको सहायता पहुँचा सकता है। इस प्रकार व्यावसायिक कार्यों-द्वारा मनुष्य अपने आध्यात्मिक विकासकी गतिको तीव्र या मन्द कर सकता है।

संक्षेपमें हम कह सकते हैं कि सब भूतोंमें भगवानको देखना और उनके कल्याणके लिये पूरे मनसे प्रयास करना ही अपनेको दिव्य बनानेका सबसे बढ़िया तरीका है। इसके द्वारा ही भगवान्‌से सतत, अटूट और अविकम्पन योग स्थापित किया जा सकता है। इसीसे मनुष्य नित्य योगी या नित्य संन्यासी बन सकता है।

अपील

सभी धर्मों और धार्मिक संस्थाओंके लिये यह चुनौती है—आदर्श पुरुष और आदर्श स्त्रियाँ बनाना। सभी आदर्श व्यक्ति एक धर्म या सम्प्रदायके नहीं होंगे, एक व्यवसायके नहीं होंगे, उनका पहनावा या भोजन समान नहीं होगा। पर उन सबमें मानवतासे अभिन्नताकी भावना विद्यमान होगी। जीवनको वह पवित्र समझेंगे,

और एक ईश्वरको ही सर्वत्र और सारे विश्वमें देखेंगे, वह जहाँ भी जायेंगे, ज्ञान-प्रेम और आनन्द बिखेरते जायेंगे।

मानवके नवनिर्माणकी योजना असम्भव प्रतीत होती है, पर वास्तवमे यह साध्य है, क्योंकि मनुष्यकी प्रकृतिको सिखाया और सुधारा जा सकता है। एक बात यह भी है कि इस योजनामें भगवान्‌की दया और सहायताकी पूरी आशा की जा सकती है। वेदोंने विश्वास दिलाया है कि ईश्वर अपने भक्तोंकी इच्छा अपूर्ण नहीं रहने देता और श्रीकृष्णने उत्तम इच्छाओंको अपना ही स्वरूप बताया है? बाइबिल भी ऐसी योजनाओंको प्रोत्साहित करती है। "ढूँढ़ो, और तुम पाओगे। खटखटाओ, और दरवाजा खुलेगा।" "मैं तुमको यह भी बताता हूँ—पृथ्वीपर यदि तुममेंसे दो व्यक्ति एक मत होकर कुछ भी माँगें तो स्वर्गमें मेरे पिता उसे पूरा करेंगे। क्योंकि मेरा नाम लेकर यहाँ दो-तीन लोग एक साथ बैठेंगे, वहाँ मैं उनके बीच जरूर पहुँच जाऊँगा।"

निःसन्देह कार्य बहुत बड़ा है, पर यदि बहुत-से लोग एक मन होकर प्रयास करें तो यह अवश्य पूरा किया जा सकता है। वाल्मीकिरामायणमें कहा है "उत्साहमें महान् शक्ति है। इस संसारमें ऐसी कोई भी चीज नहीं है जो उत्साहपूर्वक प्रयास करनेसे प्राप्त न की जा सके।" योगवासिष्ठके अनुसार "मनुष्यकी आत्मा काफी शक्तिमान् है। दुनियामें ऐसा कुछ भी नहीं है जो उचित प्रयत्नसे प्राप्त न किया जा सके।"

इस महान् और पवित्र कार्यमें पहले हमारे धर्माचार्यों और धर्म-उपदेशकोंको ही करनी चाहिये। हमारे यहाँ धर्म-सहिष्णुता

और सहअस्तित्वकी परम्पराएँ दृढ़तासे जमी हुई हैं। इसके आगे एक कदम बढ़कर ही हिंदूधर्मके भीतर तथा अन्य धर्मोंसे सहयोग करके अच्छे मनुष्य और सुखी दुनियाँ बनानेके लिये बड़ा पुरुषार्थ करना चाहिये।

संसारको बदलनेके लिये अति मानुषी उपाय भूतकालमें किये जा चुके, पर वह सदा असफल रहे। इसका ज्वलन्त उदाहरण तिब्बत है, जहाँ तन्त्रद्वारा अलौकिक शक्तियोंके लिये प्रयास एक राष्ट्रीय व्यवसाय बन गया था। आइये, विज्ञानसे सीख और सहायता लेकर अप्राकृतिक उपायोंकी कमियोंको प्राकृतिक तरीकोंसे पूरा करें। आत्माके लिये शरीरका जो महत्त्व है वही आध्यात्मिकताके लिये लौकिक कृत्योंका है। धर्ममें लगा हुआ मनुष्य धार्मिक कामोंपर जितना ध्यान देता है उतना ही ध्यान हमें सांसारिक कर्तव्योंपर भी देना उचित है।

धार्मिक काम कुछ ही लोगोंको आकर्षित कर पाते हैं, पर लौकिक कर्तव्योंसे सभीका प्रयोजन है। इसलिये इस सन्देशको देशके कोने-कोनेतक पहुँचानेके लिये हमको जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें प्रबुद्ध व्यक्तियों—शिक्षाविदों, उद्योगपतियों, सरकारी विभागों, प्रेस-रेडियो तथा समाजसेवी संस्थाओंकी सहायता प्राप्त करनी चाहिये।

हमारे धार्मिक नेता इस चुनौतीको स्वीकार करें और आदर्श नर-नारी बनानेके स्वप्नको साकार करें। यही वेदान्तका असली सन्देश है और यही मानवकी सबसे बड़ी सेवा होगी। ईश्वरभक्तों और मानवप्रेमियोंके लिये श्रीकृष्णका यही आह्वान है।



श्रीहरिः

महत्त्वपूर्ण चेतावनी



जयदयाल गोयन्दका

ॐ

महत्त्वपूर्ण चेतावनी



लेखक

जयदयाल गोयन्दका

म० चे० १-२—

प्रकाशक—गोविन्दभवन-कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुर

सं० २०४५ प्रथम संस्करण १०,०००

मूल्य एक रुपया पचास पैसे

मुद्रक—गीताप्रेस, गोरखपुर

*

नम्र निवेदन

प्रस्तुत पुस्तकमें गीताप्रेसके संस्थापक ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाद्वारा अपने मित्रों, प्रेमियोंको अपनी मातृभाषा (राजस्थानी) में लिखे गये कुछ पत्रोंका संकलन है। यह दुर्लभ संग्रह उनके अत्यन्त निकट प्रेमी परलोकवासी पूज्य श्रीघनश्यामदासजी जालानने किया था। जो उनके सुपुत्र श्रीरामदासजी जालानके सौजन्यसे प्राप्त हुआ है। ये पत्र प्रायः ज्यों-के-त्यों प्रकाशित किये गये हैं।

इनको मननपूर्वक पढ़नेसे जीवनमें भगवान्‌की तरफ बढ़नेमें उत्साह तथा प्रेरणा मिलती है और साधनमें रुचि बढ़ती है। जिज्ञासुओं तथा साधकोंके लिये यह पुस्तक बहुत प्रेरणादायी सिद्ध हो सकती है। अतः सभीको इनसे अधिकाधिक लाभ उठाना चाहिये।

श्रीगीता जयन्ती, मार्गशीर्ष शु० ११
सम्वत् २०४५

—प्रकाशक



ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

शास्त्रोंका अवलोकन और महापुरुषोंके वचनोंका श्रवण करके मैं इस निर्णयपर पहुँचा कि संसारमें श्रीमद्भगवद्गीताके समान कल्याणके लिये कोई भी उपयोगी ग्रन्थ नहीं है। गीतामें ज्ञानयोग, ध्यानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग, आदि जितने भी साधन बतलाये गये हैं, उनमेंसे कोई भी साधन अपनी श्रद्धा, रुचि और योग्यताके अनुसार करनेसे मनुष्यका शीघ्र कल्याण हो सकता है।

अतएव उपर्युक्त साधनोंका तथा परमात्माका तत्त्व रहस्य जाननेके लिये महापुरुषोंका और उनके अभावमें उच्चकोटिके साधकोंका श्रद्धा प्रेमपूर्वक सङ्ग करनेकी विशेष चेष्टा रखते हुए गीताका अर्थ और भाव सहित मनन करना तथा उसके अनुसार अपना जीवन बनानेके लिये प्राणपर्यन्त प्रयत्न करना चाहिये।

निवेदक—

कार्तिक शुक्ला १२/२००६ | जयदयाल गोयन्दका।

बाँकुड़ा



भगवान् श्रीराम

॥ श्रीहरिः ॥

महत्त्वपूर्ण चेतावनी

(१)

मि० पौष सुदी ८ सं० १९७१

प्रेमसहित राम राम । भगवान्‌को याद रखना चाहिये-भूलनो चाहिये नहीं । जपको अभ्यास रातदिन करो । ज्यादा कांई लिखा । एकदम निष्काम होवो । आनन्दरामजी हमारे कने अनेकी माँड़ी है, जिको उनांको भी भोत मन देखों तो आनेकी सलाह भलाई देना, नहीं तो सलाह देना नहीं । विशेसरलालजी खेमकाको सकाम भोत है जिको कोई बात मांय आवे तो निष्काम करनो चाये । ससारका भोगां सेती छूटनो, रातदिन सत्संग करनी, घंटा तथा दो घंटा रातने दिनमें हरेक वक्त पॉच आदमी मेला होयकर सत्संग करनी । श्रीहरिके नामको जप भोत लगन साथ करो । और कछु करनो तुमाने है नहीं । आगला आपकी जानै । तुमा तुमारे काम मांय सावधान रवो । एक हरिकी शरणागति निष्कामभाव सेती होवो, फेर कोई चिन्ता नहीं । भाईजी ! तुमारे आनन्द नहीं होनेको के कारण है ? तुम्हारे तो सारी बातकी बिद लागोड़ी है फेर भाईजी ! तुमां किस वास्ते आनन्दमें मगन नहीं होते हो । तुमाने के बातकी इच्छा रही, गुप्त भावसेती निगै करो, तुमां किस वास्ते ईश्वरके मांय

रातदिन मन नहीं लगाते हो । किस वास्ते संसारकी मिथ्या वस्तु देखकर अति वैराग्य नहीं करते हो । अबी संसारके मांय तुमा किस वास्ते रत हो । अबी तुम अति वैराग्यको धारण करो । मिथ्या पुत्र, स्त्री, धनको आसरो छोड़ो । एक हरिके नामको आसरो धारण करो। मान-बड़ाई छोड़ो । अज्ञान-निद्रा सेती चेत करो । तुमारा साथी पार होरया है । तुमा अबी अज्ञान माय सोनेको वक्त है नहीं । अबी तुमारे रस्तो जादा दूर नहीं है । भाईजी ! तुमारा धन भाग्य है, चिठी बार बार बाँचना । जिस वक्त मन कमती प्रसन्न होवे उसी वक्त बाँचना । तुमारे सगली बातकी ततबीज है ।

(२)

मि० चैत शुदी १ सं० १९७२

लिखी चक्रधरपुर सेती जयदेवका राम राम । भाई हनुमानदास सेती जयदेवका राम राम । भोत राजी हॉ ।

हरिके नामको सुमिरन ही सार है सुमरन भक्ति सेती भजन सेती उधार होनो कोई बड़ी बात नहीं । भोतसा दिन चला गया । अब कानें तुमारे ठीक मालूम देव है । भजनमांय दिन बीता जिका गया रहीं और रात ने सत्संग होनी चाये । ३ तथा ४, जना सागै बैठकर भजनकी बात करनी चाये । कछु गीता भी पढ़नी चाहिये जिके सेती भजनमांय प्रेम होवे । भजन जादा होनेके वास्ते सत्संग तथा शास्त्रांको विचार ही सार है । बिना सत्संग भजन होने सके नहीं । भजन निष्काम होया पीछे तो कछु भी करनो होवे नहीं । हरिकी शरण होना चाये ।

कहा भरोसो देहको, विनसि जाय छिन मांहि।
स्वांस स्वांस सुमिरण करो और जतन कछु नाहिं॥ १॥
कहता हूँ कहि जातहूँ कहाँ बजाऊँ ढोल।
स्वाँसा खाली जात है, तीन लोक का मोल॥ २॥
जिवना थोड़ा ही भला, जो हरिका सुमिरण होय।
लाख बरस का जीवना, लेखे धरै न कोय॥ ३॥
कहता हूँ कहि जात हूँ सुनता है सब कोय।
सुमिरन सो भला होयगा, नातर भला न होय॥ ४॥

(३)

मि० कार्तिक सुदी १ सं० १९७२ कलकत्ते

पाने तीजेका राम राम। उपरंच लक्ष्मीजीका पूजन कातिक वदी १४ शनीवारने रातने २ बजे भोत आनन्द सेती कीनो; पूज चाचोजी सेती जयदेवका पॉवाधोक वचना। और श्रीहरिके निष्कामभावसे शरणागत होवो। दिन बीते जाते हैं, फिर कुछ भी उपाय चलेगी नहीं। रातदिन उसके नामको जपो। उसको सुमिरन रखो, निष्कामभावसे पीछे कुछ भी करनेकी दरकार है नहीं। शरीर भी आपको है नहीं, फिर लाख रुपया तो कुण काम आहेगा। शरीरमांय जदि ५ सेर मादी वेशी भी होवे तो और कांई है। और लोगाने ले जाने मांय कष्ट होवेगो। शरीरने पशुकी जिस तरह पालै तो कुणकाम आवेगो। शरीर तो जरूर नाश होवेगो। रात दिन आनन्द रवे उस आनन्दको भी नाश नहीं होवै उसको आसरो करो। मिथ्या वस्तु, नाशवानको आसरो छोड़ो। धन पुत्र, स्त्री कोइ भी रवैगा नहीं,

चेत करो। अब भी किस वास्ते गाफिल पड़ा हो। एक दिन लकड़ियाकी शरण श्मशाम मांय करनी पड़ैगी तो!सौखिनाई कुण काम आवेगी। नीच सूता खो चाये ऊपर थोड़ेसे स्वाद वास्ते इस प्रकारके भोगां मांय डूबकर हरिसे सज्जन कूँ छोड़ै उसको धिक्कार है। अब असल जिनसको आसरो लेवो। अज्ञान निद्रा मांय सूताने चेत करनो चाये। भोर होता जाता है।

नरतनु पाइ बिषय मन देई। पलटि सुधा ते सठ बिष लेई।
ताहि कबहूँ भल कहै न कोई। गुंजा गहै परस मनि खोई॥

(४)

मि० चैत वदी ४ स० १९७२

भाई हनुमानदास जोगलिखी चक्रधरपुर सेती जयदेवका प्रेमसहित राम राम। मै राजी हूँ।

तुमा लिखी प्रेम बणो पड़ो है तो फिर और के चाये। और रातदिन भगवान्‌को सको जितना याद, प्रेमीके नामको जप, सुमिरन, ध्यान, भजन, भक्ति जिस प्रकारसे होवे करनी चाये। और काम जल्दी बनानेकी नांडी सो तो भगवान्‌को कृपा सारू है। हरदम भजन, सत्संग तथा शास्त्राँको विचार होने सेती होनेको उपाय है, सोई हमां आया जना कही भी थी। तुमारे याद होसी नहीं। रातके वक्त इसी टेम करनी चाये। सगला सामिल होने सके जितना होकर भगवान्‌के भजन मांय प्रेम होवै जिसा शास्त्र देखना चाये। शरीर मिथ्या है। जब शरीर नाश ही होय जावे फेरु उस सेती कछु भी काम लियो जा सकेगो नहीं। फेरु शौखिनाई कुण काम आवेगी।

हरि ना कह्यो मुख गाय कै, तै कहा कियो जग आयकै ।
घर त्याग तृष्णा ना मारी, कहा करी राख लगायकै ॥
कियो भेष तै जग ठगन कौ, कहा करौ चर्स चढ़ायकै ।
नारी निहारी और की कहा करो लंगोट लगायकै ॥
उपदेश दियो नहीं धर्मको, कहा करो घर घर जायकै ॥
बहुरंगके टीके दिये, कहा भयो भक्त कहायकै ।
चोला मलमलके पहिन कै कहा कियो भगुवे रँगायकै ॥
प्रभुको प्रसन्न तै नहि कियो, कहा कियो जगत् रिझायकै ।
पुरुषोत्तम कहै हरिको भजो, फिर रहोगे पछितायकै ॥

यहाँ रहिना नहीं वहाँ जाना है, प्रीतकरो सबसे भाई । टेर
एकहि राह बनी सबहिनकी, कहाँ रंक कहाँ राना है ।
वेद पुराण षट् शास्त्र पढ़े तुम, अब कहाँ तुम्है सुनाना है ॥
सोयो खायो हरि नहिं गायो, वे सब जीव नादाना है ।
बालक तरुनाई बूढापन भी, कहाँ पीना कहाँ खाना है ॥
सुर नर असुरपना खर कूकर, पाप पुण्यका न पाना है ।
बागी भयो फिरत अनुरागी, यह जग उसका थाना है ।
पुरुषोत्तमके आवे न जावै, जिसका उनसे प्याराना है ॥

(५)

मि० वैसाख सुदी ६ सं० १९७३ कलकत्ता

जोग लिखी ऋषिकेश सेती जयदयालका प्रेम सहित राम राम वचना । और तुमारो शरीर ज्यादा लाचार होवे, तो शरीर तांई बुलानैको भलांई तार दे देवो बाकी मिलनैकी टाँण

तांई बुलानो चाये नहीं। और तकलीफ माँय होनो चाये जिसो भजन किसलिये होयो नहीं—ऐसे मोके तो जरूर करनो चाये थो। भजन बिना तुमारो कुण सहायता करनै वालो है। ध्यानकी बात निगह करो। जो कछु है सब भगवान् ही है। एक सच्चिदानन्द माँय सब कुछ है। हरवक्त एक सच्चिदानन्द परमात्मा ही है। ऐसो ध्यान हर वक्त भजनकै प्रताप सेती ही होवै है।

तबलग कुसल न जीव कहँ, सपनेहुँ नहिं विश्राम।
जब लग भजत न रामको सोक धाम तजि काम॥

निष्काम भजन बिना स्वप्नमें भी शान्ति होनी मुश्किल है। मैं कछु है ही नहीं तथा संसार तथा शरीर, सभी दिखनेवाली चीजां मिथ्या है। देखनेवालो सर्वव्यापी साक्षी होयाँ पीछे साक्षी मैं भी साक्षी पनै माँय मै भाव सो भी है नहीं। ऐसो ज्ञान भी भजनसे ही होने सकै है।

श्रीरघुवीर प्रतापसे सिन्धु तरे पाषान।
ते मतिमंद जे राम तजि, भजहि जाहिं प्रभु आन॥

और महादेवजी पंडरेऊ वालै सेती राम राम बँचना। आपकै लायक काम मँगायो सो जिस कामकै लिये आप आया वोही करनो चाये। हर वक्त भगवान्को जप करनो ही मनुष्यको काम है भगवान्को कभी भूलनो नहीं चाये। योही मनुष्य को धर्म है। भाई हनुमान सेती जयदेवका राम राम बँचना। प्रेम तुमारो है ही। गंगाजल आनन्दरामजीके सागै भेज दियो

है । हाथ लगाकर भेजनेकी लिखनी चाये नहीं ।

(६)

मि० जेठ वदी १ स० १९७२ कलकत्ता

भाई हनुमान सेती जयदेवका राम राम वँचना । प्रेम हरदम रहनो चाये । पीछे कछु हरज नहीं । राम राम को जप निष्काम भाव सेती होयां ही पूरण प्रेम होवै सोई जानियो । जिको सत्संग और शॉस्त्र की दरकार है । थोड़ी भोत एक एक शास्त्र सीखनैकी चेष्टा होनी चाये । थोड़ी भोत गीताकी भी चेष्टा होनी चाये । रातके वक्त ५—४ आदमी मिलकर सत्संग की वातां करै तो भोत ठीक है । वद्रीनारायण कन्हैयालाल नै राम राम । पूज माजी कयो मालियेकी माजी सेवा चोखी करै सो वहुत आनन्दकी वात होई । कन्हैयालालजीकी माजी नै पूछियो कि वद्रीनारायग और उसकी वहू सेवा किस माफिक करै है । और कन्हैयालालकी दादोजी सेती भी पूछियो ।

और तुमॉ कसुर माफकी वात लिखी सो लिखनी चाये नहीं । मेरे कोई उपदेश कै माफिक चालनै सकै नहीं जिकी कोई भूल नहीं । चालनो किसो आपकै सारे है । मन मॉय उमेद चेष्टा चाये । कोई तुमारी भूल हो जावै तो आगै नै मन मांय भोत जोस राखनो आगैने भूल करॉगा नही । नियमके माफिक धारण कर लेना । आज सेती आगै नै कोई भूल जिस तरॉ नहीं होवे । प्रहलादरायजी भ्रातुके ने याद

रवैं तो राम राम बारम्बार कहना चाये । हमानै भोत याद करे है ।

एक नामकी याद-गिरी रखनी चाये । समय अमोल्क समझकर वृथा एक पलक भी जावै तो जानी चाये नहीं। हमारी मूर्खतासे फालतू गयो ।

आज कहै मै काल भजुं काल कहै फिर काल ।
आजकाल के करत ही औसर जासी चाल ॥

(७)

मि० जेठ सुदी १२ सं० १९७४ (चुरु दिया गया)

लिखी चक्रधरपुर सेती जयदेव डेडराज केन श्री राम राम। भाई हनुमानदास सेती जयदेवका राम राम ।

प्रेम दिन दिन ज्यादा होवै जिसी ही उपाय चाये। और अभी मेरो खड्गपुर जानै को विचार है नहीं। सुपनै मॉय मुलाकात भलाँई हो। पूज काकोजी की चिठी बद्रीनारायणजीकी आयी है। पीछे कटे चिठी देवाँ कछु लिखी नहीं । हमाँ अनुमानसे ऋषिकेश चिठी देई है और आपका पॉवाधोक लिख दिया है । बद्रीनारायणको पोष्टकार्ट भोत आनन्दको देनेवालो है जिको वाँचलेयो ।

उपदेश—तुमा शरीर सेती अपनैकूँ फरक देखो। फेरूँ अपनेकूँ भी मत देखो । फेरूँ आनन्दरूपकूँ देखो फिर तुमाँ आनन्दरूप हो । तुमारै कूं समजो । सर्व

व्याप्त एक आनन्द हो । आनन्दमय होकर संकल्प-रहित-फुरना-रहित्त होओ ।

दोहा—सुमरन सुरत लगायकर मुख ते कछु न बोल ।
बाहरके पट देयकर अंतर के पट खोल ।।
माला तो कर में फिरै जीभ फिरै मुख माहिं ।
मनुवा तौ चहुँ दिशि फिरै यह तो सुमरन नाहिं ।।
कहता हूँ कहि जात हूँ, कहाँ बजाऊ ढोल ।
श्वासा खाली जात है तीन लोक का मोल ।।
ऐसे महँगे मोलका, एक श्वास जो जाय ।
चौदह लोक पटतर नहीं, काहै धूर मिलाय ।।
तुलसी पिछले पापसों, हरिचरचा न सुहाय ।
जैसे ज्वरके जोरमें भोजनकी रुचि जाय ।।

(८)

मिति सावन बदी ६ सं० १९७२ कलकत्ता

बाँकुड़े सेती जयदेवका राम राम बचना ।

............और आती दफे एक आदमी पुष्पोंकी माला घाली सो उनको अपमान होनो चाये नहीं इसलिये कछु भी कयो नहीं । आगैने इस माफिक होनी चाये नहीं । माला तो भगवान्के गलें मांय भलाँई घालो, तथा कोई पंडित के भलांई घांलो, फूलां मांय जीव भोत होवें है । जीव हिंसा हमां देखने सका नहीं । और मान है जिको

मिथ्या ऊपरको लोकदिखाऊ प्रेम है । हमा मानका भूखा हां नहीं । हमा तो एक पूरण प्रेमका हाँ और प्रेम भी सचो और जोर को । जैसे—

जिन्हे प्रेम प्याला पियो, झूमत तिनके नैन ।
नारायण वा रूप मद, छके रहै दिन रैन ॥
रूप छकै झूमत रहे, तनको तनक न ज्ञान ।
नारायण दृग जल भरै, यही प्रेम पहिचान ॥

प्रेम होया पीछे अपमान भी मान है । जैसे भगवान् भी प्रेमहीके कारण अर्जुनका घोड़ा भी हाँका है और भी कई काम ओछे-से-ओछा प्रेममांय आनन्द सहित करे है । मै तो तुच्छ साधारण आदमी हूँ बाकी प्रेम जहाँ नेम नहीं है । प्रेम जहाँ मान नहीं है । मान तो प्रेम मांय संकोच करने वालो है । आगैने मान ज्यादा होनो चाये नहीं । मान होनेसे मेरो कलकत्ते जानेको ध्यान कमती रवै है । और संसारके भोगाके प्रेमके वास्ते हमारे साथमें प्रेम करै है जिको प्रेम कचो है । और संसारकी जिनसां लेयकर मेरो जो मान है जिको अपमान ही समझनो चाये । भोगी और शोखीन आदमी संसारके मानने अच्छो समजता होसी । आत्मारामजी होवे तो उनान प्रेम सहित बारम्बार जैगोपाल कहना चाये, उनको प्रेम और मेहरबानगीकी कठे ताई कही जावै । उनकू तुमारे सेती भी हमा उत्तम समझते है ।

(९)

...पाने दूजेका राम राम बचना । भाई.......सेती जयदेवका राम राम । हेत ममता राखता रयो । प्रेम आनन्द बनो पड़ो है ।

श्रीपरमेश्वरने हरदम याद राखियो । हमारी तरक्की इतनी बड़ाई भाई महादयालने लोगाके सामने करनी चाये नहीं। सौ आदमियौंके दर्शनांकी भोत बड़ी बात है । हमा साधारग हां ।

और आपको कोई कसुर है नहीं ! आपने कोई प्रेमकी बात होवै जिको तुमा कछु भी विचार करना नहीं । हमारी मरजीके माफिक सगली बात होवै हैं । पीछे तुमारो कछु भी दोष है नही । हमा तुमाने रेल मांय कयो थो । तुमारो भी हमारे मांय पूरो प्रेम है नहीं जिको भाईजी ! पूरो प्रेम होया पीछे कछु देर लागै नहीं । पूरण प्रभाव जांणां पीछे कछु बाकी रव नहीं । संसारके हिसाबसै तुमारो भोत प्रेम है, सगला सेती ज्यादा प्रेम है ।

ईश्वरभावसे पूरण विश्वास होव तो परमेश्वर तो सगली जगां मौजुद है, दरसण होया पड़ा है । फेरु कोई चिन्ता रव नहीं ।

हमारे कहणै मांय पूरण विश्वास तथा हमारेपर पूर्ण विश्वास—तथा प्रेम पूरण होया पीछे संसार मांय कछु कर्तव्य बाकी रयो नहीं । इस माय जानलियो और कछु पूछनो होवै तो चिठी मौजुद राखियो रूबकार पूछियो ।

(१०)

मि० आषाढ़ वदी ५ सं० १९७२

लिखी चक्रधरपुर सेती जयदेवका राम राम । भाई हनुमानदास सेती जयदेवका राम राम बँचना । प्रेम दिन-दिन ज्यादा होवै जिसी चेष्टा राखनी चाये । नामके जप सेती सगली बात होवै है । रात-दिन

हरिको स्मरण रवे जितनो राखनो चाये। बद्रीदासको पोस्टकार्ड बाचनेकी मांडी सो आनन्दके देनेवालो ही थो।

तुलसी विलम्ब न कीजिये, भजिये राम सुजान।
जगत मजूरी देत है, क्यों राखे भगवान॥
चतुराई चुले पड़ी, भट्ठी पड़े अचार।
तुलसी हरिकी भक्ति, बिन चारों वर्ण चमार॥

(११)

श्रावण सुदी ६ सं १९७३

श्रीआनन्दरामजी सेती जयदेवका राम राम बँचना। हेत ममता ज्यादा होवे प्रेम बढ़े जिकी चेष्टा चाये। और भजन सत्संगकी बात निगह करो। दया कृपाकी बात मेरे कू लिखनी चाये नहीं। उपकार दया करनेवालो एक हरि ही है। संसारको मिथ्या झंझट तो शरीर रवे जठै ताई हमारे साथ है हमारे ऊपरको झंझट कानी मत देखो। तुमा तुमारो काम जल्दी बनानो होवै जिको बनाओ। अभी विशेष झंझट तुमारे आगे है नहीं। घंटा २ अनुमान दूकानको काम देखनो चाये और तुमारोके लियो। एक घंटा भी संग होवै तो चोखो है। मेरे रहनेको कछु ठिकानो नहीं। मिथ्या काम ताईं इतनी फुरसत खरच करनी चाये नहीं। एक पलक भी मिथ्या काम मांय जावै जिको बिचार करनो चाये। जनम मरनका दुःख याद करना चाये। कालकूँ भूलना नहीं चाये। परमार्थके काम मांय शरीर कू लगानो चाये। रामनाम ही धन है। हमारी बातको विश्वास राखो। 'रामनाम' धन भेलो करनो चाये।

कबिरा सब जग निरधना, धनवंता नहिं कोय ।
धनवंता सोइ जानिये, जाके राम नाम धन होय ॥
मर जाऊँ मांगू नहीं, अपने तनु के काज ।
परमारथके कारणै, मोहि न आवै लाज ॥

(१२)

मि० सावन सुदी ३ सं० १९७३ कलकत्ते

श्रीआनन्दरामजीसे जयदेवका राम राम । आपका पत्र मिला । मैं कृपा करनेवाला कौन हूँ ।

येषां न विद्या न तपो न दानं ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः ।
ते मृत्युलोके भुवि भारभूता मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ॥

अर्थ—जिसमें विद्या, तप, दान, ज्ञान, शील, धर्म कोई भी गुण नहीं है । वे इस लोक माँय भूमिका भारभूत है । वृथा मनुष्य-रूप धरा है । मनुष्यका रूप दिखनै माँय है । असलमें मृग (पशु) है सो मनुष्य शरीरको फल—भजन है । भजन सेती सगला गुण होया करै है और सत्संग सेती भजन ज्यादा होवै सोई आपनै भोत दफे लिखो ही है और संसारका भोगा माँय मनुष्य किस वास्ते जावै है । शरीर भी साथ नहीं जावै तो भोग थोड़ा ही साथ जावेगा । दिन वीता जावै है । फेरू भोग तुमारै कुण काम आवेगा । हर वक्त लिखने सै भी आप संसार और शरीर माँय आसक्त हो रया हो फेरू लिखनोके काम आवै । और पुरुषार्थ सेती होनी होवै जिकी उपाय तो किसीके हाथ है नहीं । और जहाँतक होवै समय भजन शास्त्रोंकी बातां और सत्संग माँय

विनानो चाये । हरिके नामको सुमिरन ही सार है। और मेरे तो कोई वक्त तो कोई थोड़ो भोत झझट रवै ही है। मेरे झंझटको ख्याल करनो चाये नहीं जो काम करनो होवै झटपट करनो चाये।

कलिजुग सम जुग आन नहिं, जो नर कर बिश्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल, भव तरु बिनहिं प्रयास॥
हरिमाया कृत दोष गुण, बिनु हरिभजन न जाहिं।
भजिय राम सब काम तजि, अस बिचार मन माहिं॥

(१३)

मि० सावन सुदी ७ सं० १९७३ चुरु

श्रीरामवल्लभ सरावगी सेती जयदेवका राम राम वंचना। ममता है जिकी सेती ज्यादा रखनी चाये।

उपदेश—कलियुगके माफिक आनन्द देनेवालो और कोई युग है नहीं, कारण राम नामका गुण गाने सेती संसार सेती उद्धार हो जावे है—इसी माफिक तुलसीदासजी लिखे हैं।

२ना जितना गुण-दोष है, हरिकी मायाका है। इससे हरिके भजन बिना नहीं जीता जाता। और भगवान्‌की प्राप्तिका सुख भगवान्‌की भक्ति बिना रहणां सम्भव नहीं है। इससे हरिकी भक्ति ही सार है।

माता पिताकी, बड़े भाई, भाभीकी सेवा करनी, हुक्म माननो, रोज पगां पड़ने बराबर कौन तपस्या है?

जीवांपर दया परोपकार, निष्कामभावसे करने बराबर धर्म नहीं है। हरिके नामके जपके बराबर उद्धारको उपाय नहीं है

जिस तरह दूसरेकी स्त्रीने माताके समान, दूसरेके धन कूं धूलके समान, सगली आत्मा अपनी आत्मा समान--ईश्वरकी शरणागति सच्ची बनानेवाली है, उसके उद्धार होने मांय कोई चिन्ता नहीं ।

जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई ।
कोटि भाँति कोउ करै उपाई ॥
तथा मोक्ष सुख सुनु खगराई ।
रहि न सकै हरि भक्ति बिहाई ॥

(१४)

मि० भादवा वदी ३ सं० १९७४

चक्रधरपुर सेती जयदेवका राम राम भाई हनुमानदास सेती जयदेवका राम राम प्रेम सेती ।

विश्रुतानि बहून्येव तीर्थानि विविधानि च ।
अंशेनापि न तुल्यानि नामसङ्कीर्तनस्य च ॥

सगला भोतसा तीर्था मांय बुद्धि अनुसार स्नान करनेका फल भी हरिके एक नामके अंश बराबर भी होवे नहीं इसी भाँति शास्त्र कवे है फेरूँ भी नामको जप सुमिरन नहीं होवे तो आपको के लिखो जावे । और स्वारथ छोड़ सर्व दुनियांकी सेवा करी जावै तो भगवान्‌की ही सेवा समझनी चाये । किसीके पास सेवा नहीं करानी चाये । माजीके चरणोंकी सेवा, हुक्म तुमां तथा भाभीजी पूरण तौर सेती पालन करो तो भोत आनन्दकी बात है ।

शरीरने तो नाश होयां ही सरेगो। और अपने साथ सदा ही थोड़ी रवेगो । ऐसो मोको कठे मिलेगो। हमा बराबर कहकर भी के करां । तुमारे रुपया स्त्री, पुत्र कोई भी सहायता नहीं करेगा । एक हरि ही मालिक है। उस मालिक कू भूलकर नमकहराम होवनो चाये नहीं । रातदिन जितनो भजन करोगा उतनो ही आनन्द होवेगो। संसारका भोग भुगता तो के, और शरीरको कष्ट होयो तो के, शरीर जावे तो के—मुरदेके समान समझकर और मान अपमान कूं छोड़-सर्व कूं ईश्वर माफिक माने। सेवा मांय लगानो चाये ।

(१५)

मि० भादवा सुदी ९ सं १९७४

लिखी चक्रधरपुर सेती जयदेवका राम राम । भाई हनुमानदास सेती जयदेवका राम राम । भाईजी! परमात्मामें प्रेम होयकर हरिके दासकी पदवी पाय लेवोगा तो हमा भी हमारो परिश्रम सफल मानांगां । तुमां जो कछु करते हो उसका फल तुमारे ही कूं मिले ऐसो मेरो भाव है। मैं कछु भी किसीसे नहिं चाहूँ हूँ और श्रीरामचन्द्रजी प्रजासे कहते हैं—जो कोई मेरा हुक्म मानेगा सोई मेरा सेवक, दास और प्रेमी है। सोई भाईजी। हुकम पालने सेती भगवान् ही वश मांय है फेरू आदमीकी तो बात ही कौन है। आप कूं भी मेरो लिखनो है, जहाँतक सको निष्कामभावसे राम नामको अभ्यास करनो चाये। अमोलक समो समझकर फेरूँ रामनाम सेती प्रेम होवेगो जणा दुनियां सेती आपे

ही वैराग होवेगो । यदि ऐसो मोको पायकर भी भवसागर नहीं तरोगा ऐसी मंडलीके साथ होयकर भी भवसागर नहीं तरोगा सोई आत्म-हत्यारा निन्दा करनै योग्य मूर्ख आत्म-हत्यारा गति ही जावैगा ।

सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुसासन मानै जोई ॥
जो अनीति कछु भाषौ भाई। तो मोहिं बरजेहु भय बिसराई ॥

जो न तरै भवसागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निन्दक मन्द मति, आत्माहन गति जाइ ॥

इसी भाँति दोहा चौपाई लिखा है । असलमें ऐसे मौके ऊपर भी हरिका दर्शन नहीं होया, तो पीछे अपनी आत्माका आपही नाश करना है । तथा फेरु ऐसा मौका मिलना भोत ही मुश्किल है । इसी भाँति रामचन्द्रजी प्रजा नै कवै है । सोई भाईजी ! आपन भी उसोई मौको मानकर हरिकै नामको जप, हरिको ध्यान, सुमिरन निष्काम करकर उसको सब सेती आत्मा मानकर उसके बराबर किसीको नहीं मानकर उसके सिवा और कोई बातकी इच्छा करनी नहीं चाहिये ।

श्रीरामजी (१६)

मि० कार्तिक सुदी १ स० १९७३

लिखी चक्रधरपुर सेती जयदेवका राम राम । श्रीलक्ष्मीजीका पूजन करा का० वदी १५ वृष्पतवार रातको बहुत आनन्द सेती

सब कुछ भजन ही सार है । भजन मांय इतनो होयकर भी मिथ्या संसारके भोगां मूरख हो फँसेगा । जो तुमारा है उसीका चाये ।

होयो जावे है कोई भी तुमारो नहीं। दिन गया सो फेरु नहीं आवै। इससे पहली सेती ऐसो हो चितावनो चाये जिकै पीछे पिछतावनो पड़े नहीं। ऐसी भक्ति करनी चाये फेरु कछु करनो बाकी रवै नहीं। जैसे सुतीक्ष्णजीने भक्ति करके भगवान् सेती वर पायो थो।

तुमहिं नीक लागै रघुराई। सो मोहि देहु दास सुखदाई॥
अबिरल भक्ति बिरति बिग्याना। होहु सकल गुण ग्यान निधाना॥
अब प्रभु संग जाऊँ गुरु पाहीं। तुम कहँ नाथ निहोरा नाहीं॥

और भगवान् आपही वरदान दे दीनो। भाईजी! मुनी नै कछु भी मांगनो पड़ो नहीं। भगवान सब जगां व्याप्त है। फेरु कछु भी चिंता नहीं है। तुमा विश्वास राखो, इतने लिखनै पर भी कछु नहीं तो ज्यादा कहाँ तक लिखी जावै। एक हरिको आसरो ही सच्चो है। जो कछु भी होवै उसको आनन्द माननो चाहिये। राजा जनकके माफिक सब झूठो मानकर रहनो चाये जैसे ..मे कमल।

श्रीरामजी (१७)
मि० कार्तिक सुदी ११ स० १९७२

लिखी चक्रधरपुर सेती जयदेवका राम राम। कामको झंझट तथा सत्संगकी त्रुटी होने सेतो भजन कम होवै—इससे आनन्द एकसो रवै नहीं। थोड़ो भोत प्रारब्धको भी कारण है। इसकी कछु चिंता नहीं। पुरुषार्थ बलवान है। इस माफिक ध्यान होया पीछे परमपद उसी वक्त हो जावे है। तुमा लिखो तुमारै प्रभावनै किस

तरां जानो जावे सोई हमारो तो कछु प्रभाव है नहीं जना जानो के जावै। श्री परमात्माको प्रभाव पूरण रुप सेती परमपदकी प्राप्ति होया पूरण रुप होवै है। पूरन प्रभाव जानो जावै। बाकी स्वारथको छोड़ो। निष्काम भाव सै जितनो सुमिरण, चितवन याद करो जावै जितनो उनको गुणानुवाद सुनो जावै उतनो ही आनन्द प्रेम निष्काम होवै उतनो ही प्रभाव जानो जावै। और वैराग भी संसार सेती होवै।

नारायणकी भक्ति किये बिन, मुक्ति कोई नहिं पावैगा।
राजस तामस देवहि पूजै, रजतम पुर ने जावैगा॥
भैरव भूत प्रेत चंडिहित, गन्दा भोजन खावैगा।
तामस बोली तामस वृति, तामस शास्त्र सुहावैगा॥
यही जान रज तमको त्यागो, हृदय में पुरुषार्थ दिखावैगा।
देव मनुष्य ऋषि दास हरिके, सबसे प्रीति सुहावैगा॥
भक्ति करै सो सबसे उत्तम, द्विज मुनिआदि कहावैगा।
पुरुषोत्तम को दास दास मिल, वे परपद पहुँचावैगा॥

श्रीरामजी (१८)

मि० मगसर सुदी ९ स० १९७२

लिखी चक्रधरपुर सेती जयदेवका राम राम। पाने दुजेका राम राम। भाईजी! सब सेती गरीब निवाज मिलै है। गरीब सबसे तथा सबको दास होयकर सेवाभाव राख कर फेरु चाये जठै रवो, मन वशमें करनो चाये। विषय भोगोसे मन हटाकर भगवान् माय लगानो चाये।

नारायण मैं सच कहूँ भुज उठाय के आज।
जो जिय बने गरीब तूं मिले गरीब निवाज॥

जिनको मन निज वस भयो, तजकर विषय विलास।
नारायण ते घर रहो, चाहे कर वनवास॥

इसलिये तुमां चाये कल्कत्तै रवो चाये वाकुड़ै रवो विषय भोग सोखिनाई ऐस और आराम छोड़ो। और निष्काम भाव सेती काम करनो चाये। तुमकूं भाईजी। चिन्ता कुण वात की है। भजन राखता हुवां हुवै सो काम भलाईकरो, भजन छोड़नो नहीं चाये। भजन नै तुमां नहीं छोड़ोगा जणा भगवान् तुमानै कवी नहीं छोड़ैगा। उसके नामको जप और ध्यान ही निष्कामसे करनो असली शरणागतको भाव है। मै भाव करकर करो जावै जिको कामही नाशवान है।

श्रीरामजी (१९)

मि० मगसर सुदी ९ स० १९७३

लिखी चक्रधरपुर सेती जयदेवका राम राम।

पुत्रवती जुवती जग सोई। रघुपति भगत जासु सुत होई।

ध्यानकी वात निगह करी। भजन को जोर होने सेती वैराग होने सेनी ज्यादा देर ध्यान ठहरे। और भाई जी! मेरी वड़ाई तथा दया किरपाकी वात लिखनी चाये नहीं। श्री हरिके नामको जपही सार है। भगवान्‌के नाम सेती सव कछु होवै है। इससे जल्दी काम करनो चाये। समय वीतो जावै है।

श्रीहरिः (२०)

मि० मगसर वदी २ स० १९७३

लिखी चक्रधरपुर सेती जयदेवका राम राम। और भाईजी। तुमारै प्रेमकी वात तुमां जानो ही हो। जिसो तुमां हमारे साथ

प्रेम राखो उसो मै भी राखूँ हूँ। ध्यान सपनेका समाचार निगैकरा। भाईजी! इच्छा वासना मात्र ही खराब है। जैसे भगवान् गीता माय अर्जुन नै कवै है। गीता अ० २ श्लोक ७० समुद्र अपनी महिमामें स्थित है, पूरण है, अचल है, जल उसमें गिरै है उसी माफिक निष्काम माय सभी आनन्द शान्ति आपै ही आवै। कामनावाले मै नहीं।

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमाप प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत् कामा यं प्रविशन्ति सर्वे सशान्तिमाप्नोति न कामकामी॥

औरके अभी इच्छा तथा वासना तो है क्यूंकि वासना नाश तो परमपद पूंचे बिना होवै नहीं। हरि से निष्काम भक्ति निष्काम कर्म समज सकता है अबी तो कछु संसारके भोगांकी भी कछु इच्छा है बाकी भजन कै बदलै भगवान सेती मांगै नहीं। श्री शंकराचार्यजी महाराज चार वार्ता उत्तर भोत ही चोखी दिखी है।

प्र० दरिद्र कौन है—उत्तर—जो बहुत तृष्णावाला है वही।

प्र० श्रीमान् कौन है—उत्तर—जिसके पूर्ण संतोष है वही।

प्र० जीता हुआ ही मृतकके समान कौन है—उत्तर—पुरुषार्थ-हीन जीता हुआ मृतकके समान है।

प्र०—अमृत क्या वस्तु है? उत्तर—जो सुखकी भी आशा रहित है वही।

कोई नई बात सुपनै की तथा ध्यान की होवै तो लिखियो।

(२१)

मि० मगसर वदी ९ स० १९९३

लिखी चक्रधरपुर सेती भाई हनुमानदाससे जयदयालका राम राम बारंबार ।

और कामको झंझट तो जितने परमेश्वरकी प्राप्ति नहीं होवे जितने रहिवो करे है । भाईजी ! झंझटके कारण भजन कमती होवेनो चाये नहीं । भजन ही सार है । भजन तो चाहें प्रेमसे होवो, चाहे सखाभावसे, चाहे दास भावसे, भलाई वैरभावसे होवो, उसको सुमिरन होनो चाये । जैसे—

रात मरै ना दिन मरै, मरै न भीतर बार ।
वैर बाँध भगवान्से, जीत लिया संसार ॥

भाईजी ! भजन कमती होवे तो ध्यान भी विशेष काम आवे नहीं । उसको सुमिरन ही सार है ।

(१) उसके नामको याद राखके काम होवै सो करनो चाइजे ।

(२) मै नहीं, मैं नहीं, हरवक्त याद राखनो चाहे ।

(३) सर्व वासुदेव है, एक परमात्मा ही सब कुछ है इसो भाव हरवक्त आवे ।

(४) उस सर्व व्याप्त भगवान्में मैं भावको रमा दे । सब जगा व्यापक, सब जगा सेती देखनेवालो, सब जगा सेती सुननेवालो— ऐसा जानने योग्य जैसे गीता अ० १३ । १३—

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥

इसको अर्थ गीता मांय देख लेना चाये। फेर मैं और संसारको मिथ्या कल्पना करकर मै और संसार कछु भी जिनस नहीं है। पहलो भी कछु जिनस थी नहीं।

वद्र पातुकका समाचार नीगेकरा। उनको विचारनो चाये तुमा अपनो काम छोड़ो। मिथ्या संसारकी फासी मांय पड़ा क्यूं दुख पावो हो। मिलनेकी टाण रवै सोई ठीक है मिलनेके वास्ते ढील होवे सो नीगे छे। होवे जिस माय आनन्द मानो जावै तो भोत ठीक है। सुपनैकी ध्यानकी बात नीगेकरी। आनन्द होवे सो चोखी बात।

(२२)

मि० पौष वदी सं० १९७३

लिखी चूरु सेती खूबचन्द जयदयालका राम राम बँचना। राजसी फुरना भलाई फुरो, नामको जप होनो चाये। और हरवक्त नामको जप हानेको उपाय पूछो सोई भगवान्‌को प्रभाव जाने बिना और प्रेम होवे बिना हानेकी कोई उपाय है नहीं। और भगवान्‌को विछोह भलाई होवो, कोई फिकर नहीं। बाकी उस प्रेमप्यारेका चिन्तन प्रेम सहित हरवक्त निष्कामभावसे सहित होना चाहिये। तथा और कछु भी नहीं होवे तो फकत उस मांय अनन्य प्रेम होनो चाये, विछोह भलाई होवो—कोई फिकर नहीं। भगवान्‌का जप ध्यान सत्संग करने सेती ही प्रभाव जानो जावे है। और वैराग भलाई मत होवो। नामको जप ध्यान और सत्संग करने मांय हरवक्त प्रेम होनो चाये।

मिलनेकी बात नीगैकरी, मिल्नो यद्यपि संयोगाधीन है। तो भी प्रेम होनेके कारण चेष्टा हरवक्त ही करनी चाये। और मिल्नो भलाई कमती होवो वाकी प्रेम कमती होनो नहीं चाये।

भाईजी! भगवान्‌के मुख सेती निकला हुआ वचन श्रीगीताजी है। जिको पढ़नेको अभ्यास चाहिये। उनका वचन पाल्नसेती ही उनको प्रेमी और भगत तथा दास, सखा समजो जावे। रामायणमें भी लिखे है।

सो सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुसासन मानहिं जोई॥

भाईजी! मेरे पर आपको विश्वास और मेरे मांय प्रेम है तो भोत उत्तम है। असली प्रेम तो सोई समजो जावे प्रेमीकी बात प्राणोंसे भी प्रिय समझे। ऐसो ही प्रेम निष्काम भावसेती होनो चाये। आपसरीको प्रेमी होयकर भी ऐसो प्रेम नहीं निरभावोगा तो फेरु और किसको लिखूँ! तुम्हारे ऊपर घरमें भी कोई मालिक नहीं है। फेरु आपने पूरण प्रेमके वरतावकी तथा भावकी त्रुटि किस लिये है। मैं तो फेरु भी कछु आधीन हूँ।

(२३)

पौष वदी २ १९७३

लिखी बाँकुड़ेसेती जयदेवका राम राम बँचना। भाई हनुमानदास सेती जयदेवका भोत भोत राम राम वंचना। घनस्यामदास मोतीलाल विशेसरलालजी खेमका गोरखपुरवाला आया है। जल्दी चेतनो चाये।

आजकलकी पाँच दिन जंगल होगा वास।
ऊपर ऊपर हल फिरै ढारै चरगें घास॥"

रात गँवाई सोई कै दिवस गँवायो खाय।
कबिरा जनम अमोल है कौड़ी बदले जाय॥
तुलसी पिछले पाप सो हरिचर्चा न सुहाय।
जैसे ज्वरके जोरमें भोजन की रुचि जाय॥

पोष वदी ७ सं० १९७३

पाने दुजेका राम राम। ध्यान इसी भाँति करनो।

शरीरसेती मै न्यारो है। शरीर संसार सर्व मिथ्या मृग तृष्णा मात्र है। सर्व परमात्मा ही आनन्दरूप सेती व्याप्त है। मै कछु भी नहीं। सब परमात्मा ही होय रहो है। दीखनेवाला देखा जावे सो सर्व मिथ्या कल्पना मात्र है। स्वप्न माफिक है। भाई! तुमा भी एक जगां मै भाव मत देखो। सर्व व्याप्त परमात्मा ही है। तुमां नहीं हो परमात्मा ही एक जगां रहो हुवो न्यारो-न्यारो दीख है। जब तुमां शरीर तथा नाम नहीं तो फेरुँ संसारको जो कछु नुकसान होवे। संसारकी सर्वजिन्सा शरीरको फायदो पहुँचानेवाली है। तुम चिन्ता फिकर किसको करो हो। तुमारे भलाई जो कछु होवो तुमा तो एक ही राम, राम ही राममय संसार देखो नीचे ऊपर सगले व्याप्त आनन्दरूप होय रहा है। जो कछु दीखै, है देखनेवालो है, सर्व मायामात्र है। भरम मात्र है नाश होयो पड़ो है सनै सनै पल्टो जाय रयो है।

(२४)

पाने दुजेका राम राम बँचना।

हनुमानदास मिलनैकी टाण मांडी सो हमारे नीगेमें है। इतनी टाण राखनी चाये नहीं। इतनी टाण तो भगवान्‌के दर्शनोंको

चाये । सो आगलो सगली जगह हाजिर ही है । इतनी टाण पर भी मिलनेमें ढील होवे उसने भी आनन्द ही माननो चाये यदि इस मरमको तुमा समझने सको तो । और आग तुमा पूछो थो पूरणप्रेम सेती विछोह कितना दिन और देखनो पड़ेगो सोई भाईजी । जिस दिन तुमारे पूरणप्रेम आपवाले पूरण आनन्द स्वरूपको विछोह है उतणा दिन । इसका कछु नियम लिखो जावे नहीं । और तुमां लिखो मैं मेरी जाणमें होवे जितनो पुरुषार्थ करूँ । सोई भाईजीके भोगोंको आसरो है जितणो ही पुरुषार्थकी त्रुटि है भगवान्‌का भक्त तो भगवत्‌चरणको आसरो राखे है उसके नामके स्मरणको । सोई और किसी भोगां को तथा देवको आसरो मान नहीं । संसारके मिथ्या बर्ताव मांय भलाई संसारी जिनसा तांई भोगां की बात कहो और किसी महात्माने बड़ाई देवे जना भलाई कवो मेरो धन्यभाग्य है । असलमें भगवान्‌के नामको और चरणके ध्यान को ही आसरो राखे है । और इतने लिखनेपर भी धारण नहीं होवे सोई समझनेकी त्रुटि है । भाईजी भीतरको अन्धकार मिटे बिना समझनो होवे नहीं सोई सत्संग भजन और भगवान्‌के ध्यानसे भीतरको अंधकार नाश होवे है । और मिलने तांई पुरुषार्थ पूछो सो नामको जप और ध्यान ही परम पुरुषार्थ है उसके करनेसे आप भगवान्‌को भी मिलनो पड़े है । और सत्संगका जरूरत होवे जना सभी आपही तत्वीज लाग्यां सरे । नहीं तो आगलेने आपको महात्माको रूप धरकर मिलनो पड़े । इससे उसके नाम और ध्यान मांय होवे जितनो अभ्यास करनो चाये । और तुमा लिखो इतनो काम होयकर भी

याद रखे जिकी उपाय लिखियो, सोई भगवान् मांय प्रेम रखना चाये। प्रेम ही प्रधान है नामके जपकी जास्ती होनेकी चेष्टा चाये। जिस किसी उपायसे भी होवे मालिकके स्मरण रहनेकी कोशिश चाये। उसपर भी मालिकको काम करणो। भूल होय जावे तो कोई चिन्ता नहीं। जितने संचित पापोका जोर है जितने तो मालिककी खटाली काडणी पडे इस मांय हरामी होनो चाये नहीं आनन्द सहित मालिकको सब काम राजी खुशी करनो चाये। जिस वक्त मालिकको समझ लेवोगा—प्रेम होय गयो है। जणा पिछे मालिक आप ही उसने छोड़े है नहीं उतने तो जो कछु भी आगलो करे है पक्को होने ताई करे है।

(२५)

मि० पोष सुदी ४ स० १९७४

पाने तीजेका राम राम वंचना। भाई हनुमानदाससेती जयदेवका राम राम वंचना। और हमा सुणा है तुमा पूज्य चाचोजी लालचन्दजीको चिठी देई जिकी मांय लिखो है आप चेष्टा करकर चोवारा कराय देवोगा तो बालकां के रेणेके लिये जगह होय जावेगी सोई भाईजी इस माफिक लिखनेसेती सकाम भाव प्रकट होवे है। भोत विचारनेकी बात है तुमारो शरीर वरतनेके बाद बालकाके रेणेके लिये इतनी लाचारीका समाचार लिखना बहुत ही सकामकी बात है मरनेके बाद भी घरवाला गैलने खेजीका तकलीफ नहिं पावे या कामना पुनः जन्म देनेवाली है और भोत सकामतासे विचार करने भीतर यो भाव भी कोई समय होनो कोई बड़ी बात नहीं कि लड़का अच्छा होवेगा तो मरनेके बाद अच्छो करेगा जिको मेरेको अच्छा

फल होवेगो तथा मरनेके बाद मेरा नाम चलतो रवे तथा मेरा लड़का स्त्री तकलीफ नहीं पावे सोई भाईजी बहुत विचारकी बात है। तुमारे लड़का स्त्रीको जैसो फिकर है उसो ही सगलाको राखनो चाये। नहीं तो किसको भी नहीं राखनो चाहे। मरने बाद जो कछु होवे उसको चिंता नहीं करनी चाये और घरवालों कूं अच्छी शिक्षा देनी चाये जिकी मरनेके समय कछु भी घरवाला नै कहनो भी पड़े नहीं। अनुमान करो जावे है यदि मेरो शरीर बरतै तो मेरे कूं मेरे मरनेके बाद कै प्रबन्धकी कोई भी बातके लिये कछु घरवाला नै कहनी हो पड़े नहीं और तुमारे कूं भी उचित है इसी माफिक करनो चाये। तथा श्रीभगवान्‌की प्राप्तिके लिये भजन ध्यान सत्संगकी विशेष कोशिश करनी चाये। ज्यू चोबारा करानेकी टाण और चेष्टा है इसी माफिक परमधाम बनावनेके लिये चेष्टा करनी चाये। भाईजी! इस जगांका चोबारा तो बनावना साधारण बात है। अपने इस तुच्छ आरामके लिये कुत्ता भी घुरी बना लेवे है। बाकी हमां तो उसको धनवाद देते हैं जो परमधाममें [illegible] लिये अटल चोबारो जिसनै बनाय लियो। खैर! यदि इतनी शक्ति नहीं होवे तो श्रीपरमात्मादेवकी शरण लेनी चाहिये। यानी हर समय उसको याद रखनेकी कोशिश प्राणपर्यन्त करनी चाये। सोई अन्तमें तो काम पार पड़ जावे। नहीं तो कुत्तेकी माफिक ही संसार माय रहनो होयो समजो जावैगो। ज्यों कुत्तेको जन्म और मृत्यु होवे है—इसी मुजब तुमारो समजो जावैगो। और सांसारिक कामके लिये किसीसे लाचारी नहीं करनी। आत्मामें

कछु त्यागको जोर भी होनेकी विशेष जरूरत है। सोई भजन-ध्यान, सत्संग सेती होवे है तथा श्रीगीताजीके अभ्यास सेती होवे है। जिके लिये फुरसत तुमारें कूं भोत कमती मिले है। सोई तुमारे समज मांय तो अपनो असली काम बनायकर तैयार होनो चाये। जिस कामके लिये तुमा आया था उस काम नै जल्दी वनाय लेनो चाये। ज्यूं टिकट कटाया पीछे रेलकी गाड़ीका मुसाफिर डीकता है उसी माफिक टिकट कटायकर मृत्युको डीकना चाहिये। मृत्यु चाये जद आवो, हर समय सब काम सारकर तैयार रहनो चाये। जिको मरनेके वाद की कछु भी चिन्ता होवे नहीं। या चिट्ठी सत्संगवालोनै भी वंचानेकी जचें तो बंचा सको हो।

(२६)

पाने तीजंका राम-राम। हनुमानदासजी होरे पंचायती हेलीके बटवारेका समाचार—

लोग या वात देख रया है जयदयाल यदि हनमानकी पक्ष लेयकर बोलने तांई खड़ो होय जावे तो इसकी भी निन्दा करां। और भी बहुतसी अडांस है। कारण विना पक्ष करे भी तुमारो पक्षमें मेरे कूं समज लेवे। इसमें कुण वड़ी वात है। मै तो साधारण मनुष्य हूँ। श्रीकृष्णचन्द्रको अर्जुनकी पक्ष करनेवाला भोत-सा मूरख आदमी समजे था। अवी चेजे के काम मांय हरजो होवे है नहिं, वाकी जास्ती दिन निकलने सेती हरजो होने सके है। चेष्टा करनेको विचार है जिस तरां चोवारा को चेजो बंद नहीं होवे। बाकी भाई जी! परमधामवालो चेजो भी वंद नहीं होवनो चाहिये। भोत

जोर सेती चाल्नो चाहिय। बंद होनेसेती काम मांय भोत हरजो होय रयो है। बंद तो नहीं होयो है बाकी होनो चाये नहीं। भोत नीगे साथ जोरसेती काम चालनो चाये जबतक शरीर राजी है।

(२७)

लिखी चूरुसेती खूबचन्द जयदयालका राम राम, भाई हनुमानदाससेती जयदयालका राम राम।

स्त्री मांय इतनो प्रेम चाये नहीं। इन वरसां मांय तुमा गहनो कपड़ो मालियेकी माजी तांई करायो सोई उसकी आसक्ति तथा सोखिनाई समजी जावै। हमालोगाके गहनो दो तथा सवादो हजार अनुमान को है हमारे तुमारे घरकी इज्जतको, धनको भोत फरक है। तुमांने तुमारे लड़कै, लड़कियांकै विवाह, सगाई तांई रकम को जोगाड करनो चाये थो। इतनो पैदा होय कर भी तुमारे पूँजी विशेष जुडी नहीं।—तुमारो शरीर मांय प्रेम और सोखिनाई नहीं छूटेगी इतने भगवान्‌का दरसन होणा कठे पड़ा है। आगे संसारमांय ज्ञान जिन पुरुषानै होयो है जिका भोगां मांय आसक्त था नहीं। जदि शरीर नाश ही हो जावे तो फेरूँ सौखिनाई कुण काम आवेगी। इज्जत तथा मान, बड़ाई सब धरी ही रहजावेगी। अबी इतनो समय है नहीं। कल्जुग ठहरो। जल्दी उपाय करनो चाहिये। और, अच्छा कपडा पहरने सेती मन प्रसन्न सांसारिक भोगी पुरुषांके होवे है। मोटा-सोटा फटा हरकिसा कपड़ा होवे उसमें आनन्द रवै जिके नै ही वैराग है सो भी भोत दृढ़ वैराग्य होये बिना भगवान् मिलै नहीं। और मोठ तथा बाजरी तांई तुमां केदार धानुकैने भोत तकादो

*

मांड़ौ सोई इसी कोई जिनस बीमारीनै मेटने वालो मोठ वाजरो है नहीं। सोई तुमारे आसक्ति है तथा और कोई कारण समज मांय आयो नहीं। गहनो-कपड़ो भोत कमती करानो चाये। मोटां-सोटो खावनो पीवनो करके बचे जिका दाम मालिक कै काम मांय लगाना चाये, सोई मालिक को काम तो परै रयो, तुमारे लड़कै-लड़कियांका ब्याह-सगाई का काम चलै तो भी भोत है। शरीर और मनकै वशीभूत होयकर मालिकका पीसा वरतना बंद करो। नहीं तो झूठ-मूठ हमारे पास उपदेश मंगायो जना लिखानो ही पड़ो, बाकी कुछ भी माने नहीं। लिखानो और वाचनो दोनूं ही फिजूल है। हमाने तो सभी कछु करनो ही पड़े है। बाकी तुमां अच्छी तरह विचार करो। तुमारे कारण सांसारिक लोगांके भोत हरजो पड़े है। भोतसा आदमी कवै है—इतनो प्रेम संगति करकर भी हनमानकी सौखिनाई और संसारको, शरीरको प्रेम गयो नहीं। सोई लोगाके संतोष कैसे होवे। सोखिनाई और शरीर और भोग, स्त्री, पुत्र, धन सभी कुछ धरा ही रवेगा। तुमां तुमारे काम मांय सावधान किस वास्तै होवो हो नहीं। किस वास्ते अज्ञान-निद्रामांय सोया पड़ा हो। और मोको फिर कब मिलैगो ? और, जल्दी-जल्दी काम बनावनो चाये। जबरदस्ती संसारके भोगां ने अनरथ रूप मानकर छोड़ना चाये। बाकी मिथ्या इज्जत तांई सच्ची इज्जत धूल माय मिलानी चाये नहीं।

झावर सिघानियेके बीमारी हो रही है, बाको झावर लिखो है भगवान्‌का दरशन होया है, भगवान् हाजर खड़ा है, भोत आनन्द हो रहो है। पोस्टकाट तुमाने भेजनेको विचार है। भोत ठायो राखियो। इस चिट्‌ठीने भी भोत ठाई राखियो। संसारका भोग दुःख रूप है

और संसार चक्रमांय गेरने वाला है। उसकी वासना भी बुरी है। ऐसी वासना यदि मरती वक्त होवे तो संसार चक्रमांय घूमनो पडे। इसमें लोक दिखाऊ, सो भी थोड़ो भोत संसारको काम करनो चाये जितनेमें पेट भरके पार पड़ै। सो मोटो-सोटो खावणेसे एक रुपये मांय अच्छी तरह पार पड़ने सके है। रोज जिकै वास्ते सारो दिन भरनै मांय लगा दियो जावे तो उस सेती पशु भी अच्छा है। मुटिया मजूरी करके भी पेट भरै जिका आदमी है। तुमकूं अपनो शरीर जांगड़ा बनाना चाये। अपने लड़काको अमीर सौखिन बनावनो है जिका अपनै और उन लड़कोंके खरात्री तांई है। खरचो वेसी लगाने मांय तुमारी माजीको भी भलांई हुकम मत मानो साफ कहनै सको है बिना होये लगाने तांई कठे सेती लावां। तुमारी लुगाई और माजी कोई भी तुमारी सहायता नही कर सकैगा। यदि हमारो कयो मानो तो सौखिनाई छोड़नी और खरचो कमती लगानैको विचार, हरदम भजन करता हुवां होवे तो संसारको काम बिना प्रेम, फकत लोक दिखाऊॅ चाये। संसारके काम मांय हरजो होवो, बाकी ईश्वर-दरसण मांय हरजो नहीं होनो चाये। भीख मांगकर खानो अच्छो, बाकी ईश्वर दरसणमें ढील होवे—ऐसो काम नही करनो चाये। भीख मांगकर भी तथा सिर काटनै पर भी भगवान्‌का दरसण मिले तो भी तुरन्त स्वीकार करनो चाहिये।

(२८)

लिखी चक्रधरपुरसेती हनुमानदाससेती जयदेवका राम राम बंचना। जो कछु होवे है आगले के हुकम सेती ही होवे है। जो कछु भी होवे आनन्द माननो चाये। तुमारो विश्वास नहीं तो

हमां के करां। हरि तो तुमारे पास ही हाजिर है। उसको तुमां जानते नहीं हो, तब हमारोके उपाय! तुमको यदि विश्वास होवे तो लिखे हुए की निगै करो। फेरु लिखते है। उस हरिकी शरण सेती सगली वात आपै होती है। शरण होवै तो फेरु जो कछु आगलो करै है उसमें आनन्द किस वास्ते नहीं मानते हों। आगेकी वात याद करकर भोगोंमांय संसारके माया मांय फंसना ठीक नहीं है, पीछे तुमारी मरजी। समय बीतो जावे है। तुमां तुमारे कामको याद करो।

(२९)

मि० आसोज वदी ५, स० १९७३

बहुत गई थोरी रही, नारायण अब चेत।
काल चिरैया चुग रही, निशिदिन आयु खेत॥
आज कहे मैं काल भजुं, काल कहे फिर काल।
आज कालके करत ही, औसर जासी चाल॥

लिखी चक्रधरपुरसेती जयदेवका राम-राम। भूरामलजी पूग गया है। भूरामल कवे थो, हनुमानबक्स, बद्रीदास, कन्हैयालाल, आनन्दरामजी, मनु, रंगलाल, प्रह्लाद, सगला मिला था। भाईजी! भूरामलजी उधवजी जैसे गोपियांकी खबर लाया था उसी मुजब तुमारे लोगां की खबर लाया है। ध्यान करनो ही सार है। भाईजी! संसार और भोग, शरीर तथा कुटुम्ब, धन, पुत्र, स्त्री सब नाशवान है। शरीर भी साथ नहीं जावैगो, फेरुँ किस वास्ते मन ललचावो हो। उनां सेती प्रेम छोड़नो चाये। सब सेती प्रेम छोड़ो। एक हरिके

मांय लगावोगा फेरु तो ढील है नहीं । जो जिनस थोड़ा दिन बाद छोड़नी होवेगी सो पहली छोड़नै मांय कौन हानि है । तुमारो शरीर नहीं है । तुमां भी शरीर नहीं हो तो फेरु किस वास्तै ? जो कछु होवे, चाये कोई शरीरने काटो, पीटो, चाये शरीर अब नाश होवो। एक पलक भी वृथा जानो नहीं चाये । चेतो करनो चाये । एक बात भी वृथा नहीं निकालनी चाये । जल्दी-जल्दी रास्तै चालनो चाये ।

(३०)

मि०आसोज सुदी ८, सं० १९७३

वांकुडै सेती पाने दुजेका राम-राम वंचना ।

× × × और आत्मारामजीके बारे मांय तुमां पूछो थो कि कितनोक रस्तो कट गयो । तुमां नै रुत्रकार कछु कयो थो नहीं—इससे चिठी मांय अनुमान होयो सो लिखो थो । तुमारेसे श्रेष्ठ, अनुमान मालूम होवे बाकी पक्की बात की राम जाने । और हनुमानसेती फेरु राम-राम वंचना । भाईजी ! भजन करनो हो सार है । नहीं तो पछतानो पड़ै है जैसे एक भजन मांय पुरुषोत्तमदासजी कवै है ।

प्रभुजी मैं सब विध चोर तुम्हारो ॥ टेर ॥
जो कोई निंदित कर्म जगत्‌में, करत करत नहिं हारो ॥ १ ॥
जन्म अनेक में पाप हीकीन्हें, जप्यो न नाम तुम्हारो ॥ २ ॥
आज्ञा भंग करि अनगिनती, वेद विचारो हारो ॥ ३ ॥
पुरुषोत्तमकी एकहि विनती, माफ करो तो उधारो ॥ ४ ॥

समय अमोलक जानै पीछे कछु होय नहीं । भगवान् प्रेमसेती मिले है । स्वारथ छोड़नेवालो भगवान्‌ने भोत प्यारो लागे है । निष्काम

भजनसेती भगवान्की शरण होय जावै है, शरण होया पीछे कछु ढील है नहीं। बाकी पूरग शरण होनेको उपाय एक भजन और सत्संग ही है। शरग होया पीछे कछु कर्तव्य है नहीं। सब कुछ मालिकको है। लाभ-नुकसान अगले को है। मै मेरो कछु भी है नहीं। एक सच्चिदानन्दरूप ही है। आनन्दरूप सिवाय और कुछ है नहीं। और कछु भी भासे सो मिथ्या जानै। सब मनको भासे है। मन भी कल्पित है। चिन्तना मांय आवे सो सब मिथ्या है। दृष्टा, दृश्य सब कछु कल्पित है। सबको अभाव होय जावे, रवै,सोई अनुभवरूप सच्चिदानन्द अपनै आप माय स्थित है। वाणीकी गम नहीं, मनकी गम नहीं फेर जानै कोन। आप ही पूरण मांय समायो हुओ है, अपनो भी ज्ञान रवै नहीं। पूरण आनन्द अपने आप माय सदा ही थिर है। मन तथा मनकी कल्पना थी जिकी मिट गयी। इनके साथ मै कल्पित थो, जिको विलाय गयो। गैलनै रयो सो सदा ही थो, सोई है आनन्दमय। 'मै' गया पीछे अन्तःकरण हरवक्त मगन रहता है।

(३१)

भाई हनुमानदाससेती लिखी वाकुड़ासेती जयदेवका राम-राम। हरवक्त 'मै' नहीं, नामके जपके साथ अभ्यास चाये, शरीर सेती 'मैं' भाव निकालनो चाये। नहीं तो मुश्किल है।

मैं मैं बड़ी बलाय है, सको तो निकलो भाग।
कब लग राखो रामजी, रुई लपेटी आग॥

शरीर तो मिथ्या है, नाश होयो ही सरैगो। रुई लपेटी आग भाई जी! कबतक रवेगी। शरीर सेती जल्दी बाहर निकलनो चाहिये।

मिथ्या शरीर मांय मै भाव आरोपित होगयो—जिकैने निकाल्नै मांय भाई जी ! ढील होनी चाहिये नहीं । संसारमांय बहुत-सा मनुष्य मै मेरे भावकी डोरीसेती बंध रया है । बाकी भगवान् को आधार जिनके है, उनके कोई बंधन है नहीं ।

मोर तोर की जेवड़ी, गल बंधा संसार ।
दास कबीरा क्यों बँधे, जाके राम अधार ॥

तथा बंधन होवे तो भी टूट जावे इसलिये उस परमात्माको-आधार रहनो चाये । श्रीपरमात्माको आसरो ऐसो लेनो चाहिये जो कछु है भगवान् है । प्राणोसे भी बढ़कर मालिक ने माननो चाये । उसका गुणानुवाद तथा प्रभाव सुननेसेती प्रेम जास्ती होवे है । भगवान्‌को प्रभाव सत्संग सेती जानो आवै है । इसलिये सत्संग करनी चाये । शास्त्रको अभ्यास करनो चाये । हरिकथासेती हरिके मांय भाव बढै है । भाव बढ़नेसेती मिल्नैकी इच्छा जास्ती होवे है । इच्छा जास्ती होया चेष्टा होयकर भजन जास्ती होवे । निष्काम प्रेम होयकर भगवान्‌का दरशन होवे । इस माफिक महात्मा लोग तथा भक्तजन कवै है । और, तुमा लिख्यो संसारकी आसक्तिके कारण मेरो-तुम्हारै सेती बिछोह होवै है । सोइ भाईजी ! आसक्ति तो खराब ही है । विछोह को कारण समजनो कठिन है । भाईजी ! नामको जप और सत्संग, भगवान्‌को ध्यान तथा भावसहित यादगिरी निष्काम भावसे करके प्रेम बढावनो चाये । पीछे मिल्नो भलाई कमती होवे । असल मांय प्रेम चाये । प्रेम ही प्रधान है । जदि प्रेम नहीं होवे तो मिल्नो प्रधान है नहीं ।

(३२)

पोष वदी ४, स० १९७४

वाँकुड़ेसती जयदयालका राम-राम प्रेम सहित बंचना ।

........और साधन मांय प्रेम होने के लिये सत्संग और श्रीगीताजीको अभ्यास करनो चाये ।

दो वातनको भूल मत जो चाहत कल्यान ।
नारायण एक मौत कूं, दूजे श्रीभगवान ॥

और भजन, साधन, सत्संगके समान संसारमांय कछु भी है नहीं । इस माफिक समजनेसे साधन मांय उत्कंठा होने सके है । भोगॉनै सॉपकी माफिक समजकर भूलकर भी उनको आराम जानकर भोग भोगने मांय अपनो समय नहीं बितानो चाये । आल्स और आराम है जिको ही पापको मूल है । इसलिये संसार सेती उपराम होनो चाये । श्रीनारायणदेवके प्रेम मांय कलंक नहीं लगानो चाये । जो कोई संसार सागरसेती उधार करनेवालो है और तुम्हारो निष्काम परमहित करनेवालो है । उसने कभी भूलनो नहीं चाये । और........

(३३)

मि० जे० दुजा सुदी ३

चुरूसेती—

भाई हनुमानदाससेती जयदेवका राम-राम प्रेम सहित बंचना । और बिरमपुरीके पाने ऊपर सही करनेवाला तथा नहीं करनेवाला हमारे दोनूं समान ही प्रेमी है । कारण हमाने
नहीं । और, भगवान्के प्रभावके जानां पीछे तो ग
लागनै लाग जावै । जिके मांय बड़ी

प्रभाव जानां पीछे तो संसार और संसारका भोग एकदम भासै ही नही। भाई नानूरामने प्रेमसहित राम राम। चिठो भी हाजिर होवे तो बंचाने सको हो। और, तुम्हारे भजन, ध्यान, सत्संगको किस माफिक टेम है और तुमां लिख्यो हरवक्त मन परमेश्वर मांय रवै इसा दिन कद आवैगा, सो कुण जानै। बाकी इसी फुरणा भी साचे मनसे होवे तो भोत उत्तम है। नामके जपकी चेष्टा करता हुवा भी भूल होवे लिखी, सोई अभ्यासकी त्रुटी समजी जावे। फायदो तो जास्ती गणपतरायजीसे समजनो चाये। और तुम पूछो—प्रेमको बर्ताव किस माफिक ज्यादा होवे, किस माफिक करनो चाये? सो ठीक है। प्रेमी जो कछु आज्ञा देवे उसको भोत ही प्रसन्नताईके साथ धारण करनी चाहिये। तथा अपनो प्रेमी भायला जो कछु अपने लिये कर देवे उसको आनन्द सहित माननो चाये। अपने प्रेमीके करे हुए कामको भोत उत्तम माननो चाये। भलाई अपने लिये देखनेमें खराब ही मालूम देवे। बाकी अपनो बुद्धिको तुच्छ समजकर उन प्रेमीके लिये उस कामको परसनताईसे स्वीकार करनी चाये और प्रेमी भायला निष्कामीको पूरण विश्वास करकर उसके भरोसे रहनो चाये। उसको यदि कष्ट सहित स्वीकार करी जावै है तो ठीक नहीं। चाये अपने मनके माफिक बिलकुल मत होवै। ऐसा नहीं होनेसे आगेन प्रेम कमती हो जाता है।

(३४)

मि० पोष बदी १२

चूरू सेती जयदयालका प्रेमसहित राम राम बचना। और स्वपने तथा ध्यान मांय मिलनो होयो जिकी बात लिखी करी।

आनन्दकी बात निगह करी । अभी तो तुमाने ही आनन्द होवे तुमा तो आनन्दरूप हो, जिकी अभी जीणो नहीं हो जना पूर्ण आनन्द की त्रुटि है । पूरणरूपने जाणा हो पूरण आनन्द होवे । और, वैराग ठहरे नहि सोई संसारको सच्ची जोण भोगोके मिथ्या आनन्दको आनन्द मान रहा हो । इसलिये मिथ्या भोगोंमें फँसनेवाला भोगोके कीडेको असली आनन्दको के मालुम ? और, मिलनेकी मनसा लिखी सो निग है, छुट्टी मिली नहीं सो ठीक हैं । कछु चिन्ता नहीं, तुमारो भगवान् मांय प्रेम चाहिये । भगवान् तो सब जगह हाजिर है, उसके वास्ते छुट्टी लेनी पडे नहीं । तुमारो पूरण प्रेम चाये । भगवान् सगुणरूप सब जगह हाजिर है । भगवान्सेती मिलनो होयां पीछे जयदेवसेती भलाई मिलनो मत होवो । और, मेरे शरीर मांय ईश्वरका दर्शन किस माफिक होया जिकी पूरी समझमें आई नहीं, इससे चिठो पाछी मेजी है, जोकी माडनो चाये । निशान कर दियो हैं । और, पुरुषार्थ सेती होनो तुमा लिखो सोई पुरुषार्थ होनेको उपाय है नहीं । और अपनो सिर कटनसेती भी भगवान् मिले तो तुरन्त दर्शन करना चाहिये । सोई तुमा मिथ्या भोगाने भोत कठिनता सेता पकड़ राखा है, मोटो-सोटो खावण-पीवण, परणको बरताव करने सको नहीं और तो के करोगा । तुमा तो जाण राखो है जयदयाल आपणो भायलो है फेर के चिन्ता हैं, सो इसो भरोसो राखनो चाये नहीं, जयदयालको भायलापणो कूण काम आवेगो । तुमको जयदयाल केव सो तुमा मानो नहीं, जणा जयदयालके करेगो । जयदयाल आपको आप ही किस तरह करेगो । तुमे उस भगवान्‌की शरण होय जानो चाये जो सगलांको मालिक है । हाड़-मांसको पूतलो मनुष्यको शरीर जयदयाल

तुमारी किस तरह सहायता करने सके है, तुमा उस असली रूपको जानोगा तो उधार होने मांय कोई भी फरक है नहीं।

असली रूपको जानेगो जिको फेरू ब्रह्मलोकके भोगुंको भी काकभिष्टा सामान मानकर त्याग करेगो। तुमा किस वास्ते मिथ्या शरीरतांई मिथ्या भोगामें फँसा हो। शरीर और भोगांके साथ तुमारो कौण प्रयोजन है।

तुमा तुमारो काम करो, तुमारे स्वरूपको किस वास्ते भूलो हो। तुमा शरीर तथा हणमान हो नहीं शरीर और हणमान तो नाशवान है। एक दिन नाश होवेही गो, उस मिथ्या जिनसको आसरो किस वास्ते लेवो हो। स्वप्नके बगीचेमें आनन्द भोगनेकी इच्छा करे जिको तो महा ही मूरख है। ऐसो जाण शरीरने मिथ्या जाने। ईश्वर प्राप्तिके तांई धूलमें मिलाणो चावे तो उसी भगत भगवान् तैयार है। नहीं तो मनुष्य जन्म लेणों वृथा ही है।

दोहा—नारायण अति कठिन है हरि मिलवे की बाट।
या मारग तव पग धरे, प्रथम शीश दे काट॥
जो शिर काटे हरि मिले, तो पुनि लीजै दौर।
नारायण ऐसी न हो, ग्राहक आवे और॥

(३५)

सं० १९७३

लिखी चक्रधरपुरसेती जयदेवका राम राम वंचना। और, कालदिन हमा प्रेम सेती तुमारेको कछु करड़ा समाचार दिया था। जीको आनन्दकी बात समझना, तुमा अपनेको उपदेश ही मानना।

कृपा दया परमात्माकी सगला ऊपर बणी पड़ी है। नमक हलाल करनो चाये, उसको भूलनो चाये नहीं। रात दिन उसके नाममांय मगन रणो चाये निष्काम सेती उसको जप करो उसकी स्मृति रया पीछे और उपदेशकी जरूरत है नहीं। चिठी पाछी जरूर देख तो दियो।

(३६)

कार्तिक वदी ८ सं० १९७२

भाई हनुमानदास नानूरामसेती जयदेवका बाँकुड़ेसेती राम राम वंचना।

और, सबके साथ प्रेम छोड़ एक परमेश्वरमायं प्रेम होयां पीछे परमेश्वरकी प्राप्तिमें ढील है नहीं। सब कुछ आगलो ही है। ईश्वर संसारको निमित्त कारण और ईश्वर ही उपादान कारण है। बाकी पूरण प्रेम होयां मिले। पूरण प्रेम होयां पीछे इसी भांते हो जावे—

सुनत न काहू की कही, कहै न अपनी बात।
नारायण वा रूपमें, मगन रहै दिन रात॥
देह गेह की सुधि नहीं, टूट गई सब प्रीत।
नारायण गावत फिरै, प्रेम भरे रस गीत॥

आनन्दके प्रेम मांय मगन हो चुपचाप भी रवे है। गद्‌गद् वाणी होवे, कछु बोलने भी सके नहीं। ऐसो प्रेम चाये। पूरण प्रेम होये बिना भगवान् मिलनेका है नहीं, इस वास्ते ईश्वरने सभी जगां सगुण तथा गुणातीत जिसो चावे उसी रूप मांय हाजिर है।

(३७)

मिती आसाढ़ सुदी ११

चक्रधरपुरसेती जयदयाल डेडराजका श्रीजयगोपाल वंचना।

आजदिन नानूरामको रूको मेजो जिके मांय भोत मेहनत करी है । नानूरामने कह दियो कोई समय भोगां मांय मन फँसे, उसी वक्त बाचें तथा तुमा भी जचै तो नकल उतार लियो ।

और उपदेश देनेवालो तो मैं कुण हूँ, पर महात्मा लोग कवे है कि एक भगवान्‌के नामको समिरण ही सार है ।

सुमिरण रस्ता सहजका सतगुरु दिया बताय ।
श्वास श्वास जो सुमरता, इक दिन मिलिहैं आय ॥

हर वक्त भगवान्‌को नाम अर्थसहित याद रवे उसकी तो बात कौन है, नहीं तो नामको जप ही सब साधनको मूल है । वासनाको नाश, संकल्पका नाश, निष्काम जपने सेती तो भोत ही जल्दी होवे है । नहीं भी नाश होवे है; तो कछु ढील लागे । सकाम काम भी होवे, नामको जप करे तो कई दिनां आपे ही निष्काम हो जावे। बाकी नामको जप होनो चाये । जप करने मांय ढील करनी चाये नहीं । आज कालको भरोसो राखनो चाये नहीं । भजन, भक्ति, ध्यान, सत्संग तुरन्त ही करनां चाहिय ।

आज कहे मैं काल भजुं, काल कहे फिर काल ।
आज काल के करत ही, औसर जासी चाल ॥

समय बीतो जावै है, गयोड़ो पाछो आवै नहीं ।

(३८)

मिती भांदवा वदी ८, संवत् १९७४

लिखी चक्रधरपुरसेती जयदयाल डेडराजका जयगोपाल बंचना ।

भजन सत्संग ही सार है। भगवान्‌के भगतकूं तो एक हरिके मिलनेकी ही चिन्ता रखनी चाये। भगवान्‌के नामके मांय चित्त लगानो चाये। मिथ्या जिनसकी चिन्ता भगतने नहीं करनी चाये।

चिंता तो हरि नामकी, और न चितवै दास।
जो कछु चितवै नाम बिनु, सोई कालकी फाँस॥
राम नामको सुमिरता, उधरे पतित अनेक।
कह कबीर नहि छाड़िये, रामनामकी टेक॥
राम नामको सुमरते, अधम तरै संसार।
अजामिल गणिका स्वपच, सदना सबरी नार॥

(३९)

मि० भादवा बदी ३, स० १९७५

चक्रधरपुरसेती जयदयाल डेडराजका जैगोपाल बंचना।

और यम–नियमको पानो फलसहित साधारण रूपसेती घनश्यामको उतरोडो भेजो है और स्मरण मांय ढील नहीं करनी चाये। भगत लोग तो एक भगवान्‌के नामके जप ही नै सार लिखौ है। कालको भरोसो है नहीं। समय बीतो जावै है। लाख रुपया जायकर भी एक पलक नहीं मिले जिकी मिथ्या संसारके झंझट ताँईं जानो चाये नहीं। जावै तो भी साथ मांय नामको जप तो होनो चाये। जप होवै तो ध्यान होयकर, निष्काम प्रेम होयकर भगवान् मिलने सके है। ढीलको समय नहीं है। जल्दी चेतनो चाये। गया दिन पीछा आवेगा नहीं, भजन ही सार है! एक भगत कैवे है—

सुमिरण रस्ता सहजका सदगुरु दिया बताय।
स्वास स्वास जो सुमरता, इक दिन मिलिहैं आय॥

आज कहे मैं कल भजुं, काल कहै फिर काल।
आज काल ही करतही, औसर जाती चाल॥

(४०)

मि० भादवा वदी ६, सं० १९७४

भाई हनुमानसेती लिखी बॉकुड़ासेती जयदेवका राम राम वंचना।

तुमारे आनन्दकी बात वहूनें भी एकान्त मांय कहनी चाये। नामको जप स्वरूपको ध्यान ही प्रधान है। आगे भोतसा भगत उसके प्रतापसेती परमपद लाभ करो है। नामके जपसे प्रेम होवे। भगवान् दरसण देवे है।

सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू॥
अपतु अजामिलु गज गनिकाऊ। भए मुकुत हरि नाम प्रभाऊ॥
नामु जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू। भक्त सिरोमनि भे प्रहलादू॥
कहाँ कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सके नाम गुण गाई॥

सब कछु नामके प्रतापसेती होवे है। और भी नामकी महिमा कठे तांई लिखी जावे। रेल मांय ध्यान होयो उसको एक पल्क भी नहीं छोड़नो चाये। भलाई सब नाश होवो। उस आनन्दको ड़ने नहीं चाये। फेर तुमारे कुण काम आवेगो। सदाके लिये ानन्द..५ उस आनन्दको किसलिये छोड़ते हो। ऐसा मौका मिलयां नहि मिलै है। समय सदा एकसो नहीं रवे है। चेतकरयॉ भी कुवे मांय पड़े सो महामूरख है।

(४१)

मि० कार्तिक सुदी १२, स० १९७४

भाई हनुमानदाससेती लिखी बांकुड़ासे जयदयाल गूंदकैका राम राम वंचना।

....और मै उपदेश देनेवालो कुण हूँ। बाकी तुमाने तो लिख्यो भी वणोई। तुमां कछु धारण हाथकी हाथ करो जणा तो लिखनो सफल होय जावै। जो कछु है सब भगवान्के मांय है। भगवान्की शरण होनो चाये।

दोहा—हरि मायाकृत दोष गुण, बिनु हरि भजन न जाहिं।
भजिअ राम सब काम तजि, अस विचार मन माहिं॥
देखिय रूप नाम आधीना। रूप ज्ञान नहिं नाम विहीना॥
सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखे। आवत हृदय सनेह बिसेषे॥
कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। राम न सके नाम गुणगाई॥

उस भगवान्के नामके जपकी शरण लेनी चाहिये। नामकी बड़ाई मै कठे तांई मांडू। नामकै जपनैसे फेरू ऊपरसे काम करनै मांय कोई अॅाट नहीं। सभी वातां नामकै जप सेती होवे है। अच्छै संग सेनी भजन ज्यादा होवे है। और, अब मेरो शरीर भोत राजी है। और दुकानका काम करता हुआं भी समय ठीक बीतनेकी पूछी, सो तो ठीक है। प्रेम पूरण होयां होवै। बाकी भाईजी! बिना दुकानके काम एकान्त मांय समय ठीक रहतो हुवे तो भोत आनन्द माननो चाये। लौगोंके तो काम छोड़कर भी भजन तांई बैठे जणां भी मन स्थिर रवै नहीं। काम करता हुवांकी वात तो भोत

[illegible] रोजीना अभ्यास करैं तो कछु बड़ी बात नहीं । अभ्यास होनेमें प्रेम ही आगे और प्रेम ही प्रधान है । संसारके काममैं मिथ्या, व्यर्थ समझ । और भजननैं प्रधान काम समजनो चाये । फेरू कछु चिन्ता नहीं, ऐसी धारणा यदि ठीक हो जावैं तो ।

(४२)

मि० मगसर बदी ३ सं० १९७४

भाई हनुमानदाससेती लिखी बाकुडा सेती जयदेवका राम राम । भाई भगवान्‌को हरवक्त याद राखनो चाहिये । भगवान् तो भक्तोंके वास्ते ही अवतार लेते हैं ।

जन्म मरणसे रहित है, नारायण करतार ।
हरि भक्तनके हेतसों, लेत मनुज अवतार ॥

ऐसे करुणामय भगवान्‌को भूल्नो एक पलक भी चाये नहीं, ऐसा प्रेमी पुरुष मिलेगा और, महात्माको संग तथा मैत्री होयकर जो एकदिन भी भगवान्‌को नहिं सुमरेगा उसका दिन वृथा हो गया ।

जैसे—जब लौं सुमरै ना हरि, जो संतन को मीत ।
वह दिन गिनती मैं नहिं, गये वृथा सब बीत ॥

ऐसो आप भाईजी ! महात्मा पुरुषोंका साथ प्रेम तथा मैत्री करनी चाहिये । नहीं तो भजन करनो चाये । बिना भजनके जो दिन जाते हैं सोई वृथा समझा जाता है ।

(४३)

मि० मगसर बदी ६, सं० १९७८

पाने दूजेका भाई हनुमानदाससेती जयदेवका प्रेम सहित राम राम वंचना । आने कल्कत्तेमांय एकदफे बात हुई थी ब्रह्मपुरी

चूरूमांय बंद करने ताई, ब्रांकी काम पार पड़ो नहीं उस वक्त ब्राह्मणांकी तरफ़सेनी डर लागे थो, बाकी पू० फूलचन्दजी ब्राह्मणने मेला कर-कार पूछो । हमां सूको अन्न देवणको विचार करां हाँ जीको विरामन भोतराजी सेती मंजूर कर लेयी जणा चूरूका अपनी तरफ़ गोंदका भाई भेला होयकर दो बांताको बंदोवस्त इसी भाँति करो है—
(१) खरच और विवाहकी ब्रह्मपुरी कोई भाई करने पाव नहीं। सूको अन्न तथा और जिनस चाये जितनी देवो तथा विरामन जिमाने तांई नूता भी ५०० सेती जस्ती देने पावै नहीं। (२) और, पाणीवारे किसी भाईके आगेने काम पड़सी तो चूल्हे—गैल एक-एक आदमी हाजिर होसी, जिकेने जानो पड़सी ।

इसी भाँति बन्दोबस्त होयो है। जिके मांय प्रायः चूरूके गोंदकाका सगलाका दस्तकत हो गया है। फकत जयनारायणजी रामवल्लभ करा नहीं। इसी कही—काम तो भोत चोखो है। हमारी सलाह है। बाकी कलकत्तावालां करे बिना हमां दसकत करा नहीं। सोई पन्नो कलकत्ते गयो है। नानूराम होरे सामने श्रीफूलचन्दजी भिजायो है। भाईजी ! चूरू और रतनगढ़ मांय सुणां हाँ, घृत खराब दिसावर वालो आयगयो है। कारण खरचसेती पैदा कमती होवे। जना के उपाय चालै। बिरमपुरी मांय भोत ही धर्मभ्रष्ट देखनेमें आवे है तथा सूको अन्न देणो उत्तम समझकर ही हमां दसकत करा हैं। सोई तुमारे निगै रवै।

भाईबी समय बीतो जावे है, दिन-दिन कल्युग आवे है। देखी जावे के पार पडे !

परै रहो वाको अभ्यास करै तो कछु वड़ी वात नहीं। अभ्यास होनेसे प्रेम हो जावै और प्रेम ही प्रधान है। संसारके कामनै मिथ्या, फालतू समजै और भजननैं प्रधान काम समजनो चाये। फेरू कछु चिन्ता नहीं, ऐसी धारणा यदि ठीक हो जावै तो।

(४२)

मि० मगसर वदी ३ स० १९७४

भाई हनुमानदाससेती लिखो वाकुड़ा सेती जयदेवका राम राम। और भगवान्‌को हरवक्त याद राखनो चाहिये। भगवान् तो भक्तोंके वास्ते ही अवतार लेवे है।

जन्म मरणसे रहित है, नारायण करतार।
हरि भक्तनके हेतसों, लेत मनुज अवतार॥

ऐसो करुणामय भगवान्‌को भूल्नो एक पलक भी चाये नहीं, ऐसा प्रेमी कूण मिलेगा और, महात्माको संग तथा मैत्री होयकर जो एकदिन भी भगवान्‌को नहि सुमरेगा उसका दिन वृथा ही गया।

जैसे—**जव लों सुमरै ना हरि, जो संतन को मीत।**
वह दिन गिनती मैं नहिं, गये वृथा सव वीत॥

ऐसो जाण भाईजी! महात्मा पुरुषोंका साथ प्रेम तथा मैत्री करनी चाये। नहीं तो भजन करनो चाये। विना भजनके जो दिन जाते सोई वृथा समझा जाता है।

(४३)

मि० मगसर वदी ६, स० १९७८

पाने दूजेका भाई हनुमानदाससेती जयदेवका प्रेम सहित राम राम वंचना। आगे कलकत्तेमांय एकदफे वात हुई थी मलुरी

चूरूमांय बंद करने ताईं, ब्रांकी काम पार पड़ो नहीं उस वक्त ब्राह्मणांकी तरफसेनी डर लागे थो, बाकी पू० फूळचन्दजी ब्राह्मणने मेला कर-कार पूछो । हमां सूको अन्न देवणको विचार करां हॉ जीको विरामन भोतराजी सेती मंजूर कर लेयी जणा चूरूका अपनी तरफ गोंदका भाई भेला होयकर दो बांताको बंदोवस्त इसी भॉति करो है—(१) खरच और विवाहकी ब्रह्मपुरी कोई भाई करने पाव नहीं । सूको अन्न तथा और जिनस चाये जितनी देवो तथा विरामन जिमाने तांई नूता भी ५०० सेती जस्ती देने पावै नहीं । (२) और, पाणीवारे किसी भाईके आगेने काम पड़सी तो चूल्हे—गैल एक-एक आदमी हाजिर होसी, जिकेने जानो पड़सी ।

इसी भॉति बन्दोबस्त होयो है । जिके मांय प्रायः चूरूके गोंदकाका सगलाका दस्तकत हो गया है । फकत जयनारायणजी रामवल्लभ करा नहीं । इसी कही—काम तो भोत चोखो है । हमारी सलाह है । बाकी कलकत्तावालां करे बिना हमां दसकत करा नहीं । सोई पन्नो कलकत्ते गयो है । नानूराम होरे सामने श्रीफूलचन्दजी भिजायो है । भाईजी ! चूरू और रतनगढ़ मांय सुणां हॉ, घृत खराब दिसावर वालो आयगयो है । कारण खरचसेती पैदा कमती होवे । जना के उपाय चालै । बिरमपुरी मांय भोत ही धर्मभ्रष्ट देखनेमें आवे है तथा सूको अन्न देणो उत्तम समझकर ही हमां दसकत करा हैं । सोई तुमारे निगै रवै ।

भाईबी समय बीतो जावे है, दिन-दिन कल्युग आवे है । देखी जावे के पार पडे ?

(४४)

मिती मगसर सुदी ४ सं० १९७४

श्रीहनुमानदास सेती लिखी चुरूसे जयदयालका जयगोपाल वंचना। भगवान्‌के नामको स्मरण ही सार है एक भी श्वास वृथा जावनो चाये नहीं। हरवक्त नामको सुमरण करने सेती जरूर एक दिन भगवान् मिलने सके है। इसी भाँति शास्त्र लिखै हैं ऐसे पूरण प्रेमी भगवान्‌को छोड़ मिथ्या संसारमें मूरख होवेगा सोई फँसेगा। समय बीतो जावे है, एक पलकको भरोसो नहीं करनो चाये—काल-भगवान् आय पूंचेगो जणा फेरूं कछु उपाय नहीं है। इससे जल्दी भजनो चाये, जल्दी चेतनो चाये। भगवान्‌के नामको जप-ध्यान, सत्संग निष्काम भावसे जपनो ही सार है।

धन विद्या गुण आयु बल, यह न बडप्पन देत।
नारायण सोई बड़ो, जाको हरिसे हेत॥
प्रेम सहित अंसुवन ढरै, धरै जुगल को ध्यान।
नारायण वा भक्तको, जगमें दुर्लभ जान॥
नारायण जाके हिये, उपजत प्रेम प्रधान।
प्रथमहि वाकी हरत है, लोक लाज कुल कान॥

(४५)

चक्रधरपुरसेती भाई हनुमानदाससेती जयदयालका प्रेम सहित राम राम वंचना। और आप, लोग भोत-सा बाँकुड़े गया और दुकानके, संसारके कामके झंझटके कारण मेरो बाँकुड़े जानो बनो नहीं जिके ऊपर कुण-कुण आदमी कै किस-किस माफिक चित्तके ऊपर विचार आया तथा किसकै मन मांय कष्ट होयो तथा धोखो होयो तथा

कुण-कुण आदमी बाँकुड़ै गया था तथा मेरे लिये कुण गया था तुमारै निगै होवे जिसी माँडना। और मिलनेकी उत्कंठा पूछी सोई भाईजी ! तुम्हारी तो रवै चेष्टा ही है। तुमां तो बाँकुड़ै भी आया, मेरो ही जानो बनो नहीं। तुमारे प्रेमकै माफिक मैं पूँचने सको नहीं।

(४६)

जेष्ट सुदी ११, सं० १९७८

बाँकुड़ै सेती जयदेवका प्रेमसहित राम-राम वंचना। श्रीलक्ष्मीजीको पूजन कार्तिक वदो १५ बृहस्पतवार रातनै भोत आनन्द-मगल सेती कर लियो है। और समय वीतो जावै है, जल्दी चेतनो चाये। और दिवाली आ गयी। गयी दिवाली बाद आज तांई कितनो साधन तेज होयो निगै करनी चाये। अब और भी तेज चालनो चाये, और काम भलाई चाहे जितनो नुकसान होजाओ बाकी भगवान्कै नामकै जप माँय ढील होनी चाये नही। भजन, साधन, ध्यान भोत तेज होनो चाये। संसारी काम भगवान्को नाम याद रहता हुआं ही करनो चाहिये। भजन-ध्यान होता हुवां जितनो काम होवै उतनो करनो चाये। काम मांय हरजो भलाई होवो बाकी भजन-ध्यान मांय हरजो नहीं होनो चाहिये।

(४७)

लिखी चक्रधरपुरसेती हनुमानदाससेती जयदेवका राम-राम। और भाईजी ! वैराग कमती लिखो सो नामको जप कमती होयो होसी" सत्संग कमती होई, संसारको लुगाया-पतायांको भी झंझट है। दुकानको काम भी ज्यादा देख्यो होसी। सगली प्रारब्धकी-

गोलमालको काम है। बाकी कोई हर्ज नहीं। एक हरिके नामका जप और सत्सगका पुरुषार्थ चाहिये। भाईजी! पुरुषार्थसेती सब कुछ बणो है, पुरुषार्थ हीन होवै जिको तो उपाय है नहीं। प्रारब्ध होनेकी उपाय भोत है। भाईजी! वैरागका कपड़ा ही दूसरा है। तुमातो तुच्छ वैरागनै वैराग मानो हो। और छुपनेकी, बात निग करी। प्रेम ही प्रधान है।

है न्यारो सब पंथ ते, प्रेम पंथ अभिराम।
नारायण यामें चलत, बेग मिलै पियधाम।
मनमें लागी चटपटी, कब निरखूं घनश्याम।
नारायण भूल्यो सभी, खान पान विश्राम।

संसारको प्रेम ही डूबोने वालो है, शरीर, भोग, संसार, पुत्र, धन, मान, वड़ाई—सभी नाशवान् हैं। शरीर भी तुमारो नहीं है और तो कुण होवेगो। समय वीतो जावे है अमोलक, तुमा समझो नहीं। कई दफे लिख चुको, समय अमोलक है। भोत दिन बोत गया, इसो साथ सदा हो थोड़ो ही रवैगो। मिथ्या भोगको तो लोग-दिखाऊ ऊपर सेती राजा जनक के माफिक बरतना चाये। भगवान् तो बाजीगर को तमासा करो थो। तुमा सांचो मानकर किस वास्तै फँसते हो! शरीर नहीं हो, तुमरो भी नहीं है तो सब कुछ शरीर के गैल नातो है। तुमा तुमारो हो, उसको ढूँढो।

(४८)

मि० कार्तिक बदी ६, स० १९७२

भाई हनुमानदाससेती जोग लिखी चक्रधरपुर सेती जयदयाल गोयन्दकेका राम-राम बंचना। और शास्त्र कवे है भाव मिटकर—

मेरो कछु नहीं, ऐसो जानकर हरि भजे तो हरिका दर्शन होने में ढील नहीं हो। भाई जी ! आप किस काम वास्ते आया था जिकी निर्गै करो। फेरू मिथ्या काम मांय फँसा रेय जावोगा तो मिथ्या काम आपके कुण काम आवैगो भाईजी ! शरीरमाय इतनौ मोह चाये नहीं। शरीर सेती आसक्ति तो छोडनी ही पडेगी। भाईजी ! वृथा अन्न और अच्छी-अच्छी जिन्सा खायकर मैला कर रया हो। ऐसे शरीरके संगकी इच्छा किस वास्तै कर रया हो। यदि शरीर तुमारो नहि है, फेरू भोग जन-धन सगला शरीरकै आराम ताई है। शरीर ही तुमारो नहीं तो फेरू शरीरको आराम तुमारै के काम आवैगो। फेरू जमीनपर सोवो तो के फूलाकी सेजपर सोवो तो के। फेरू अच्छा पदार्थ खाया तो के, सुखी-सुखी रोटी, गाछका फल, पत्तो खायकर दिन बिताया तो के। भाईजी ! उन लोगोको धन्यवाद है जो गंगाके किनारे पत्थरकी शिलापर बैठकर सत्संग करके गुफामें ध्यान लगाकर संसारसेती उद्धार हो गया। भाईजी ! अच्छा कपडा पहरा तो और खराब मैला पहरा तो कुण काम आवेगा। समय तो बीतो जावै है फेरू कोई उपाय काम आवेगो नहीं। अमोलक समय जाणैगो जिको तो अमूल्य जिनस पैदा करेगो। कछु तो वैराग धारो ! नहीं तो इतनो लिखनो फालतू है। फेरू ऐसो मोको बडे भागसे ही मिले है। इतने मांय ही जानो।

मिती आसोज बदी २ सं०–१९७३

इस चिठीने हरवक्त बांचो तो आनन्दकी बात है। यदि तुमारे पास पड़ी ही आनन्द हो जावे तो पीछे भलांई नहीं भी। तथा देरीसे भी मिले तो कुण हर्ज है।

(४९)

बद्रीदास सेती लिखी चक्रधरपुरसेती जयदेवका राम राम। और जो कुछ होवे उसमें आनन्द मानो जदि आगलेके शरणागत होवो तो। झूठो भार आगलेपर देवो तो बात न्यारो है। आप लिखी खुसामदसेती काम होय जाये, सोई हरि मिथ्या खुसामद सुननेवाला है नहीं सच्ची खुसामदसेती काम चाले। उस सेती भी प्रेम-भक्ति तथा सखाभाव—भायलेको भाव सेती काम और जल्दी होवे।

और भजन सुमिरन बिना उधार होणो बड़ो मुस्किल है। तुमां भजन विशेष करो जना तो आनन्द होवे। मुफ्तमांय आनन्द मांगो जना कटे सेती आवे। तुमा तो बिना कमाई धनकी इच्छा करो हो। नहीं तो खुसामदकी बात लिखतां नहीं। सोई तुमाने मेहनत करनी चाये। कन्हैयालालसेती जयदयालका राम राम। अभी तो तुमा कछु चेत करो। सोकनाई कपड़ा, मान-बड़ाई कुण काम आवेगा। सरीर भी तुमारो है नहीं, फेरू और तुमारो कुण होवेगो। भोगां मांय फंस जावोगा तो फेरू हरिका दर्शन कैसे होवेगा। भोगाने मिथ्या जानना चाये। पीछे खुसी तुमारी तुमां जिस कामको आया था उस कामको करलेनो चाहिये थो।

आसोज वदी ५, सं० १९७२

पुष्पे गंधं तिले तैलं काष्ठेऽग्निं पयसि घृतम्।
इक्षौ गुडं तथा देहे पश्यात्मानं विवेकतः॥

अर्थ—फूलमें गन्ध, तिलमें तेल, काष्ठमें आग, दूधमें घी, ऊखमें गुड़ जैसे है, वैसे ही देहमें आत्माको जानना चाहिये।

एक वृक्ष समारूढा नानावर्णाः विहंगमाः ।
प्रभाते दिक्षु दशसु यान्ति का परिदेवना ॥

नाना प्रकारके पखेरू एक वृक्षपर बैठते हैं, प्रभात समय दशों दिशामें हो जाते हैं, उसमें क्या सोच है । क्योंकि सब है नहीं । मिथ्या कल्पित वस्तु हैं, स्वप्नके साथ कितनी बार ठहरने सकै है । संसार भी स्वप्नके माफिक है । जिका भी अन्तमें चिड़िया रैन बसेरे माफिक है । असलमांय स्वप्न माफिक कछु है नहीं । एक मनको ही संकल्प है । बंधन और मोक्षको हेतु एक मन ही है ।

(५०)

सावन बदी १५

श्रीविशेशरलालजीसेती जयदेवका राम राम । और, आप इतना दिन होया के करो । जो कोई आपकै साथ ईर्ष्या करै उसकै साथ भी प्रेम करनो चाये । जो कोई आपको बुरो करै उसको भी उपकार करनो चाये । वैर राखे उसके भी भलैकी चेष्टा रखनी चाहिये । सबसे मित्रभावको वर्ताव चाये । आप संसारवालोसे सबसे स्वार्थ छोड़ो । और, मान-बड़ाई छोड़ो, नम्रभावसे प्रेम करनो ही असली काम है । इनको जीतनेवालो ही दुर्लभ है । इस वास्ते आप नीचे लिखे दोहेकी निगै करना ।

कंचन तजना सहज है, सहज त्रियाका नेह ।
मान बड़ाई ईर्षा, दुर्लभ तजना येह ॥

क्रोध करे तो अपने अवगुणों पर करै । दूसराकै अवगुणां को ध्यान ही नहीं देनो चाहिये । बाकी असलमें भजन, सत्संग होयां

आपैं ही छूटैं। सब सेती निष्काम होवो। कामना नाश होयां फेर क्रोध और वैर और मान बडाई होवै नहीं। होवै तो निष्काम होयो नहीं।

(५१)

मि० सावन सुदी ५

—चक्रधरपुर सेती जयदेवका राम-राम वंचना। भाईजी। तुमां हमारी बात सेती भी रिमियाने चोखा समजो। बाकी आपने चिंता करनी नहीं, हमां भोत प्रसन्न हां। और, कामदेवकै बारेमांय लिख दियो है, हरिचरणको ध्यान करो, फेरूं कामदेवके बापकी भी सामर्थ है नहीं। भोगानै मिथ्या जानोगा जणा तो वैराग होवेगा, रात-दिन निष्कामसे राम नामको जप तथा सुमिरन करो। और आगे के माफिक और हरिचरणको आसरो लेवो।

दोहा—नीच नीच सब तर गये, संत चरण लवलीन।
जातिहिं के अभिमान से, डूबे बहुत कुलीन॥
काम क्रोध मद लोभ की, जब लग मनमें खान।
तुलसी पंडित मूरखा, दोनो एक समान।
पढ़ पढ़ के सब जग मुवा, पंडित भया न कोय।
ढाई अक्षर प्रेमके, पढ़े सो पंडित होय॥
प्रेम बराबर योग नहिं, प्रेम बराबर दान।
प्रेम भक्ति बिन साधना, सब ही थोथा ज्ञान॥
गद्गद् वाणी कंठ में, आँसू टपकै नैन।
वह तो विरहन पीवकी, तलफत है दिन रैन॥

(५२)

चक्रधरपुरसेती जयदेवका राम-राम । हरिसे प्रेम दिन-दिन ज्यादा होनो चाये । मेरे कूं भोत ओपमा देकर चिठी माडी सोई आगे मनाई करोड़ी थी । तुमारो मन होवे तो मांडो तो तुमारे पास राखा करो । मेरेको रुबकार भलाइ दिखाओ । अठे दूसरा आदमी रवे जिका समज गया है और तुमाने कह राखो है जिको ही भाव राखो और पूर्ण आनन्द करनो मेरे हाथ है नही । भगवान् आपकै हाथ राखै है । मेरे कूं कृपा, दया, दरसनां की बात लिखनी चाये नहीं । पीछे दया पाछी लिखांगा तो तुमां नाराज होवोगा । तुमां लिख्यो—तुमा सगलां ऊपर बिना ही कारण दया कर रया हो । बड़ा ही भाग होवैगा, उसने तुमारां दरसन होवेगा । सोई इस प्रकार के माफिक आपने लिखना चाये नही । तुमारे मन मांय जो कछु होवे लिखनेकी के जरुरत है ।

कबिरा नौबत आपनी, दिन दस लेहु बजाय ।
यह पुर पट्टन यह गली, बहुरि न देखो आय ।।
जिनकै नौबत बाजती, मंगल बंधते बारि ।
एक हरीके नाम बिनु, गये जनम सब हारि ।।
कबिरा देवल हाड़का, माटी तना बंधान ।
खर हरला पाया नई, देवल का सहि दान ।।
कबिरा देवल ढह परा, ईटा रहे संवारि ।
करी चिजारा प्रीतड़ी, ज्यूं ढहे न दूजी बारि ।।

(५३)

चैत वदी १३

भाई हनुमानदाससेती लिखी चक्रधरपुरसे जयदेवका राम-राम । और, सच्चे कामके वास्ते मिथ्या कामको भलाई कछु हरजो होवो । रात-दिन भजन होतो रवै जिसमां जो कछु करने सको, करो । भाईजी ! सगला दिन एकसा नहीं जाता है । लाख रुपया दियाँ भी पलक मिलैगी नहीं । भोत तेजी सेती भजन-सुमरन निष्काम भावसेती चलाओ ।

भक्तिका बाग लगाले, मेवा निकलैं अन्तन पार ।
कबिरा खेत किसान का, मिरगन खाया झार ।
खेत विचारा क्या करे, धनी करै नहिं बार ॥
बिनु रखवारे बावरे, चिड़ियां खाया खेत ।
आधापरधा ऊबरै, चते सकै तो चेत ॥

(५४)

वैसाख वदी ८

भाई हनुमानदाससेती लिखी चक्रधरपुरसेती जयदेवका राम राम । भाईजी सब कुछ परमात्मा है जिको ध्यान ठीक है । सब कुछ 'मैं हूँ'—इस मांय 'मै' रहती है । सोई निगै रवै । और सर्व जिनस आनन्द रूप दीखै, सोई बहुत चोखी बात है । पूरण आनन्द होया पीछे एकदफै तो बोली बंद हो जावेगी । गद्गदवाणी हो जावेगी । स्वप्नके ध्यानकी बात नीगै करी । और मेरी कृपा तथा बड़ाईकी बात लिखनी चाये नहीं । अपने बड़ाई तो भगवान्‌की करनी चाये । जो सबके भीतरकी जाननेवाले सब जगां व्यापक—

श्रीरामचन्द्रजी वनवासमें गया, जणा मुनी लोगांने पूछो थो इतनी हड्डी किसकी है। मुनि कहने लगे—

जानतहूँ पूछिअ कस स्वामी। सबदरसी उर अन्तरजामी॥
निसिचर निकर सकल मुनि खाए। सुनि रघुबीर नैन जल छाए॥

उस श्रीरामकी बड़ाई, ओपमा लिखा करो और उसे सबको मालिक जानो। ऐसी उसपर आत्माकी शरणागत होनी चाये॥

(५५)

कार्तिक सु० १३, सं० १९७२

चक्रधरपुरसेती जयदेवका प्रेमसहित राम राम पू० दीपचन्दजी सेती पावाधोक। बीमारी तो भगवान् अच्छेके वास्ते करे है आपलोगां न जनावनै ताईं। शरीर क्षणभंगुर है तब भी आप लोग चेतो नहीं। देखो! फेरु कछु गर्ज सरैगी नही। शरीर तो एकदिन नाश होवेगा। शरीरके द्वारा काम लेनो है, जितनो लेवो, पीछे हाथसेती डोर छूट जावेगी तो के उपाय चालेगी? इस वक्त ध्यान कमती लिखो जिको कमती होनो चाये नहीं, आपके शरीरकी कमजोरी लिखी सो भजनकी कमजोरी होनी चाये नहीं। कपड़ेकी सोखिनाई एकदम सको जठै ताँईं छोड़कर हरिभजनकी सोखिनाई पकड़ो। लोगांने अच्छा लागे जिसा ही कपड़ा पहनो और सफेद होना चाये। मोटाकानीकी अड़ास नहीं। कामदेवकी सेना सोखिनाई है, जिकीने नाश करो। हरिका चरण की निष्काम भावसे शरण लेनेवाले सेती काम, क्रोध, लोभ, मोह सगला डरता रवै है।

(५६)

लिखी चक्रधरपुरसेता जयदेवका राम-राम । और, मेरे साथ संसारो प्रेम साथ लेयकर देखा तो तुमारे जिसो प्रेम और किसीको छे नहीं। बाकी पारमार्थिक विषय देखता कोई-कोई आदमियां को है भी । और, भक्ति परमात्मा की हा होवै। मनुष्यकी के सामर्थ है ! भक्ति, सेवा करके परमात्माका भजन तो भाईजी ! दुनियां मांय भोत आदमिया करो है, बाकी मेरो साथ लेकर भी कई आदमियां की है जिकै माय भा तुमारे जिसा थोड़ा ही हैं। और, पूरण आनन्दकी बात निगैकरो। पूरण रूपको जाणा ही पूरण आनन्द होवे सो साधारण बात है नहीं। तुमां तो तुमारी चेष्टा करां जावो फिकर किस वास्ते करो हो, चिन्ता करना तो तुमारा काम नहीं है। बिना आशा सब कुछ मिलै, गीता अ० २ श्लोक ७०में देखना चाये। भाईजी ! बद्रीदासके आगे की कमाई है। तुमारे आगेकी कमती थी।

(५७)

—बद्रीनारायणसेती लिखी चक्रधरपुरसेती जयदेवका राम-राम बंचना। भाई हनुमानके कारण दानोपानी होये तो मिलनेको विचार हैं। कछु तुमारे साथ भी रेल ऊपरवालो बातां सेती सजोग होयोड़ो है। सोई मिलाप होनो तो चाये। पीछे राम जानै। एक मालिकको भूलनो चाहिये नहीं। मालिकका शरण पकड़नी चाये। उसके नामको जितनो स्मरण करोगा, उतनो ही प्रेम होवेगो। इबकाने तुमारी यादिगिरी कमती आई। भाई हनुमानसे सुपनै मांय भी मिलनो होयो थो। कानजीको प्रेम ज्यादा होवे, जिकी चेष्टा तुमां भी

करियो। राधुकी माजी होरो—पुज माजी मांय प्रेम, तुमारे मांय, हमारे मांय, हरिमांय प्रेम बढै, जिकी चेष्टा चाहिये। समय बीतो जावे है। काम बहोत भारी पड़ो है। हरिका दर्शन होयां पीछे तो कछु हरज नहीं। तुमाने नई बात होई होवे तो माडनी चाहिये। सुमिरण सेतीसगळो होने सके है। तुमां तुमारे काम मांय मत चूको। शरीरको सुख छोडो। शरीर भलाई धूल मांय मिलो, दो दिन बाद मिले तो पहली मिले तो। भोगा मांय फंसनो चाये नहो।

(५८)

मि० भादवा सुदी ८, सं० १९७३

चुरूसेती हनुमानदाससेती जयदयालका राम-राम प्रेम सहित। प्रह्लाद धानुको पूगो मांड़ो सो, ठीक है। प्रह्लाद सोखिनाई भोत करे है। सोइ डूँबनेको काम है। हमा भोत समझायो फेरु आगलेकी मरजी। स्त्रियांकी आसक्तिमांय डूबनेको काम सोखिनाई है। तुमारे भी सोखिनाई है। जिकी लोगांने खराब कर रही है।

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था वसुन्धरा पुण्यवती च तेन।
अपार संवित्सुखसागरेऽस्मिन् लीनं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः॥

(५९)

मि० मगसर सु० १४, स० १९७३

चूरूसेती भाई बद्रीदास प्रह्लाद धानुकै सेती जयदयालका राम-राम वंचना। उपरंच भाई बद्रीदासको बेटो आनन्दियो चलतो रयो सो भोत ही चिंतावाली बात है। बाकी चिंता करनेमायं कछु गरज

सरै नहीं। तुमां तो तुमारे जो कछु हो उसको भगवान्‌की कृपा समझनीचाये। अवी तुमारे संसारको के झंझट पड़ो है। तुमां तुमारो काम करो। समय बीतो जावे है। सत कमाईसेती पीसा पैदा करना चाये। अन्याय सेती लाख रिपिया भी कुण काम आवेगा। औंर, हरिको शरण उसके नामको जप सेती सव कुछ होवै है। भजन ही सार है। तुमारो काम करता हुवां जप करता रहो तो तुमारे के लागे है। पीछे जीभ कुण काम आवेगो। इतने लिखनेपर भी विश्वास होवे तो फेरु हरवक्त भजन होनो चाहिये। मुफ्तकी कमाई छोड़नी चाये नहीं। जियां भगवान्‌को भक्ति हो, जो भगवान्‌को भक्त होवे सोई धन्यवाद है। लक्ष्मणजोकी माजी अपनै पुत्रनै कवे है—

पुत्रवती जुवती जग सोई। रघुवर भगत जासु सुत होई॥
नतरु बाँझ भलि वादि बियानी। राम बिमुख सुत तें हित हानि॥

अब तुमको कौन बातको परवा है। मान, बड़ाई कोई काम आवेगी नहीं। अपने जन्मको सुधारो। समय बीतो जावे है भाई।

(६०)

मि० मगसर सुदी १५, सं. १९७२

ऋषिकेशसेती जयदयालका प्रेम सहित राम-राम वंचना। भाईजी! मन, बचन, कर्म सेती निष्काम भावसेती भगवान्‌को सुमरन करनेसेती उसके हिरदमांय भगवान्‌ने वास करनो पड़े। इसीभांति महात्मा लोग कवै है—

बचन कर्म मन मोरि गति, भजन करैं निष्काम।
तिनके हृदय कमल में, सदा करौं विश्राम॥

तब लग कुशल न जीव को, सपनेहु मन विश्राम ।
जब लग भजन न रामको, शोक धाम तजि काम ॥

भजन बिना भगवान्में प्रेम होनो मुश्किल है ! भगवान् बिना, सब मतलबी है ! ऐसे प्रेमीको कभी-भूलना नहीं चाहिये । समय अमोलक समजनो चाये ।

(६१)

सं. १९७५, सन् १९१८

बद्रीदाससेती लिखी चक्रधरपुरसेती जयदयालका राम-राम जयगोपाल वंचना ! और, तुमा लोगोने प्रेमी लिखा, सोई लिखनो चाये नहीं । सच्चो पूरण प्रेमी तो एक नारायण है, और साधारण प्रेमी है । सोई आप भी तो प्रेमी हो । मेरे से तुमारे सेती ज्यासती प्रेम राखनेवाला संसारमांय थोड़ा ही है । और ज्यादा कांई लिखां । और संसार मांय प्रेम ही एक सच्ची जिनस है । प्रेमीका प्रेमी जो प्रेमी होवे सोई जानता है । सच्चे प्रेमका जिसके इसक लाग जावेगो जिको झूठी जिनसां को कछु भी समजेगो नही । जो सच्चे प्रेमको जाननेकी इच्छा करेगो, सोई विशेष प्रेम बढावने मांय विशेष उत्कंठाकी जरूरत है । तुमकूं भी ज्यादा प्रेमकी जरूरत है तो प्रेमकी उत्कंठावालेको मैं मात्र दास हूं ।

(६२)

मिती जेठ सुदी ४

श्रीबद्रीदाससेती लिखी चूरूसेती जयदयालका जैगोपाल वंचना । तुमारी चिठी फेर आई नहीं, सो के बात है । सो इस माफिक भूलनो चाये नहीं !

एक बात मैं पूछऊँ तोही। कारन कवन बिसारेउ मोही ॥

आजकल कपड़ेके बाजारकी चल्ती है। इस कारण तुम्हारी चिठीयाँ आई कछु मालूब पटो नहीं। अपने असली बाजारकी दसा किसीक है? अनुमानसेती तो ढीली ही मालूम होवे है। मिथ्या संसारके कपड़ेकी बाजारकी चल्तीके कारण चिठी देनेमांय ढील होवे तो वहुत ही विचारवाली बात है। समय वीतो जावे है संसार अपने मतलबको है। एक भगवान् बिना कोई भी तुमारी सहायता नहीं करने वालो है। ऐसो विश्वास होवे तो फेर क्या, भगवान्ने थोडो ही भूल्तो। वाकी अभी कछुतो ख्याल करनो चाये। मिथ्या शरीर और भोगोंके आसरेको छोड़ो। सच्चे निष्कामी प्रेम प्यारे मनमोहन भगवान्को भी कभी मन अर्पण करनो चाहिये। भगवान् तो अपने प्रेमियोंके मनको आपही टाण लेवे। बाकी थोड़ो भी प्रेम नहीं होवे जणा उपाय के। मेरे कूँ भूलने मांय तो कोई अडांस नहीं, वाकी मनमोहन प्यारेको भूलनो नहीं चाये। उससे आपने वहुत काम है। संसारिक भोगोंकूँ सच्चा भी तुमा जान राखा तो भलाई जानो, वाकी इतनो भोदू तो भगवान् भी नही है। जो संसारके भोगां जितनो भी आनन्द, आनन्दस्वरूपको नहीं मानै। और भगवान् आप माने सोई रकमका दरसन देवे वाकी तुमारी खुसी, भगवान्के लिये कोई-कोई तो आपको सर्वस्व ही छोड़ देवे है। और कोई-कोई पुरुष भगवान् कूँ प्राणांसेती भी ज्यास्ती प्यारा समजे है, उनके लिये भगवान् हाजिर छे, उनको धन्यवाद है।

*

(६३)

श्रावन बदी ११ सं० १९७५

श्रीरामचन्द्रजी सेती लिखाचक्रधरपुरसेती जयदयालका प्रेमसहित राम राम । परमात्मा मांय पूरन प्रेम होया पीछे तो कछु भी करनो बाकी रवे नहीं । सोई भगवान्‌के नामके जप सेती तथा भगवान्‌के गुणानुवाद और प्रभावकी बातां सुनने-बांचने सेती ही होवे है । और, भगवान्‌के नामके जपकी भूल नहीं होवे जिकी उपाय नामके जपको तीव्र अभ्यास तथा सत्संगके करनेकी चेष्टा ही उत्तम उपाय है । और नामको जप यदि हरवक्त होण लाग जावै तो पीछे कछु भी दरकार है नहीं । प्रेम तो आपै ही होया सरे । नामको जप जिन पुरुषां कै हरसमय होवेगा उनको ही पूरण प्रेमी समजो जावेगो । सोई पुरुष दरसण करने लायक है । नामको जप नामके जपकी कीमत जाननेसेती ही ज्यादा होवे है । नामके जपके समान और कोई भी है नहीं। इस माफिक मनमें सत्य माने जणा नामको जप ज्यासती होवे। इस मांय मन भोत धोखो दिया करे है । सो बहुत सावधानी सेती विचारकर देखनो चाहिये । सब साधनांसेती नामने जास्ती समजो गयो है कि नहीं ? समजा पीछे नामको जप को कोई वक्त भी छूटन सकै नहीं । भूलसे यदि कोई वक्त छूट जावे तो उस भूलकी कोई विशेष स्थिति नहीं । दासकी तरफ देखनो चाहिये सोई लिखनो चाये नहीं । दासतो आपा सगला भगवान्‌का मात्र छा, सो "मात्र" ही छा । कारण असली दास तो भगवान्‌की सेवा करै तथा उनको हुकम पालै सोई समजो जावै । और, संसारी काम सेती तुमारो मन चिठी जानै सेती ही हटतो मॉड़ो सो बहुत

आनन्दकी बात है। चिठी तो भोत-सी गयी किननोक संसार कै काम सेती मन हटो मांडनो चाये। तुमारो साधन किसोक है लिखनो चाये।

(६४)

श्रीबद्रीदाससेती लिखा चक्रधरपुरसेती जयदयालका प्रेम सहित राम राम ! भगवान् के भजन, सत्संग तथा ध्यान बिना समो बीतो जिको धूल मांय गयो, ऐसो माननो चाये। ऐसो मानेगो उसको समो धूल मांय कमती ही जावेगो। समयने धूलमांय खोने ताई कठे से आवे। सब जगह नारायण पूरणरूपसेती विराजमान है। इस माफिक सब जगां सब समय जो याद रखता है, सोई धनवाद देनेके लायक हैं। संसारके विवाहके काममांय मूर्ख ही फंसता है। संसारको काम तथा विवाह नदीका वेग है। जो भगवान्‌का चरणरूपी नौका को तथा भगवान्‌के नामका जप रूपी नौकाको पकड़ लेता है। सोई बच जाता हैं। बाकी सभीको नदीका वेग बुहाकर ले जाता है। जो उसको जानेगा सो कभी संसार-नदी मांय नहीं ववैगा।

(६५)

१७ अप्रेल, १९१९

लिखी चूरूसेती जयदयालका प्रेमसहित राम राम बचना। चूरूमांय प्लेगकी बीमारी भोत जोर हो रही है। इस मोके हमारे कूं चूरूमांय रहनो चाये थो, बाकी पूज माजीके हुकम मुजब ही करनेको विचार है उनको हुकम है। परसूं दिन ऋषिकेशने रवाने होवने को। समय मिथ्या संसारके धन्धे मांय जावनो चाये नहीं

पांच पहर धन्धै गया, तीन पहर रया सोय।
एक पहर हरि ना भजा, मुक्ति कहाँ सो होय॥

हर वक्त भगवान्‌के नामको जप होवे तो भलाई धन्धै मांय जावो, कोई हरज नहीं ।

(६६)

मि० चत बदी १५, सं० १९७६

वद्रीदाससेती लिखाचक्रधरपुरसेती जयदेवका राम राम वंचना । और, सव समय नारायणको चिन्तन होवे जिकी चेष्टा भोत जोरसेती करोगा जना भलाई नारायण मांय मन लाग्गे । इस माफिक विचारकर सव समय नारायण मांय मन लगाने की चेष्टा राखनी चाये । भलाई सव कुछ नाश हो जावो । बाकी नारायणके चिन्तन मांय हरजो नही होनो चाये । नारायणके प्रेम माय त्रुटि नहीं होनी चाये । और कछु भी काम आवेगा नहीं । सभी नाश होनेवाली जिनसा है । उनको आसरो छोड़ो । सच्चे पूरण प्रेमी नारायणकी ही शरण लेनी चाहिये । संसारमांय नारायणके समान कोई भी प्रेमी नहीं है । उनके प्रेमके मरमकूं जिको जाण जावेगो जिको सव कुछ छोड़ एक नारायणको सच्चो प्रेमो तुरन्त वण जावेगो ।

सोऊँ तो सुपनै मिलूं, जागूं तो मन माहिं ।
लोचन राते शुभ घरी, विसरत कबहूँ नाहिं ।।

ऐसे होनेसेंती भगवान् वहुत जल्दी मिलने सके है ।

(६७)

मि० माघ बदी, स० १९७५

लिखी चूरूसे जयदयालका प्रेमसहित राम राम । और ससार मांय श्रीहरिको चिन्तन ही सार है । और प्रेम करनेयोग्य भी श्रीहरि ही है । उसको प्रभाव और भाव तथा स्वभावका मरम

जानता है सोई उसको कभी नहीं विसारता है। जो सबसे उत्तम भजन कूं तथा श्रीभगवान्के चिन्तन कूं समजता है सोई मनुष्य पूजनेके लायक तथा धन्यवाद देनेके लायक है। बाकी लोग सब आपनो जनम वृथा ही गमाता है।

(६८)

चूरूसेती भाई हनुमानदाससेती जयदेवका राम राम प्रेम सहित बंचना। समय बीतो जावे है। बहुत चेष्टाके साथ नामको जप और ध्यान करनो चाये। पीछे कछु भी हर्ज है नहीं। हरवक्त भगवान्को स्मरण रहनो चाये। भगवान् भलाई मत मिलो। मिलनेकी कछु दरकार नहीं। यदि प्रेम तुमारो भगवान् मांय होवेगो तो उसनै हाजर होनो पड़ैगो। उसको भी गरज है। तुमा चिन्ता किसलिये करते हो यदि तुमारी भजन ध्यान सत्संग मांय त्रुटी होवेगी तो ठीक नहीं है। और आनंद भी भलाई मत होवो। आनंदकी जगां भलाई उल्टो दुःख ही होवो। बाकी भगवान्के नामको जप और चिन्तवन होनो चाये। चिंतवन एक पलक भी छूटनो चाहिये नहीं। छूटनेको कोई हेतु भी नहीं है।

(६९)

आषाढ सुदी ९, सं० १९७४

लिखी बाँकुड़ेसेती भाई हनुमानदाससेती जयदेवका प्रेमसहित राम राम।

ग्रंथ पंथ सब जगत के, बात बतावत तीन।
राम हृदय मनमें दया, तन सेवामें लीन॥

दो बातन को भूल मत, जो चाहत कल्यान।
नारायण एक मौत को, दूजे श्रीभगवान॥

इसीभाँति कवि लोगोने कही है। और भी यह चार बात सार है।

१—सत्संग और सत्शास्त्र को देखनो।

२—परमेश्वरके नामको जप, अर्थ सहित निष्काम भावसेती जप करनो।

३—सब जीवोंको ईश्वररूप समज उनकी सेवा मांय अपनो सब कुछ अर्पण करनो।

४—नीतिके साथ निष्काम भावसेती सबके साथमें बरताव करनो। पूरबसे पूरब वाली बात श्रेष्ठ है। सबसे बढकर एक नम्बर है। उससे सब होवे हैं। इससे यम-नियमादि तथा २६ गुण पाया जावे है।

(७०)

लिखी ऋषिकेशसेतो जयदेवका राम राम बंचना। और सब सेती बड़ो रामको नाम है।

धन विद्या गुण आयु बल, ये न बडप्पन देत।
नारायण सोही बड़ो, जाको हरि सें हेत॥

इसलिये उसको भजे सोही बड़ो है। भगवान् सेती पूरण प्रेम होनो चाये। हमारे सेतो भी ज्यादा प्रेम भगवान्सेती चाये। भगवान्को कभी भूलनो चाये नही। भगवान्को प्रेम ही उधार करनेवालो है।

बिना भजन के कछु भी नहीं बने। 'भगवान्के ज्ञान बिना पंडित भी पशु समान है। भगवान्को भजन करनेवालो मूर्ख भी चोखो है।'

नारायण बिनु बोधके, पंडित पशू समान।
तासों अति मूरख भलो, सो सुमिरे भगवान ॥

जो कछु हो एक भजन ही सार है। भजन-ध्यान बुखार मात्र भी कमती होनो चाये नहीं। फल्रू कब होवेगो। भाईजी! शरीरकी आसक्ति छोड़ देनी चाये। शरीरने प्रारब्धके भरोसे छोड़ देनो चाये। ऐसा होनेसे भगवत्-प्राप्ति जल्दी होने सके है। शरीर तो प्रारब्धके अनुसार ही भोग भोगे हैं। जो कछु होवे उसीमें आनन्द माननो चाये। जिस वक्त भगवान्को नाम तथा स्वरूप याद आवे उस वक्त भगवान्की बहुत कृपा माननी चाये। याद आये बिना भगवान्की कृपा होवे नहीं ऐसा जानो। जब-जब भगवान्के नामको जप तथा ध्यान होवे उसी वक्त बहुत ही भगवान्की कृपा जानो और बहुत ही आनन्द माननो चाये। बारंबार हरस मानकर आनन्दमांय मगन होनो चाहिये।

(७१)

वैसाख सु० ४, स० १९७५

लिखी ऋषिकेशसेती जयदयालका प्रेमसहित राम राम वंचना!

भाईजी! निष्काम भावसेती भजन तथा परमार्थ दो बात ही सार है।

देह धरे को फल यही, भज मन कृष्ण मुरार।
मनुष्य जन्मकी मौज यह, मिलै न बारंबार ॥

मनुष्य जन्म लेयकर हरवक्त भगवान्‌को भजन करनो ही सार है, ऐसो मोको मिलनो भोत भारी भागकी बात है। भगवान्‌के नामको जप और उसका गुणानुवाद सुनना तथा केवना ही गुप्त धन है। सोई बॉटनेसेती भी बढनेवाली जिनस है। याने भजन करनो तथा दूसरो सेती करावनो चाये।

कृष्ण नाम गुण गुप्त धन, पावै हरिजन संत।
खरचै से छीजै नहीं, दिन दिन होय अनन्त॥

और, भगवान्‌के नामका गुणानुवाद करना तथा सुनना तथा दूसराँने सुनावना—सभी रकमसेती उसकी बढती होती है।

(७२)

वैसाख बदी ९

चूरूसेती पाने दुजैका राम राम। सपने माय मिलनेकी बात निगह करी। समय बीतो जावे है जल्दी चेतनो चाये।

इस ओसर चेता नहीं, पशु ज्यों पाली देह।
राम नाम जाना नहीं, अंत पड़ी मुख खेह॥

भाईजी! वहुत दफे आपनी वात होयोडी है इस माफिक ढील होनी चाये नहीं। पीछे लागया जिका भोत कछु फायदो उठा लियो। तुमा भायला किसलिये होया! भाईजी! रिपीया तथा भोग और शरीरकी आसक्ति मांय फंसनो चाये नहीं। दिन वीता जावे है। शरीर छय होयो जावे है बड़े बड़े राजा भी चले गये। कछु भी साथ नहीं गया।

कबिरा यह तन जात है, सकै तो लेहु बहोर।
खाली हाथों सो गये जिनके लाख करोर॥

(७३)

भाई हनुमानदाससेती लिखा ऋषिकेशसेती जयदयालका राम राम। एक भगवान्‌के नामको आसरो चाये।

राम नामको सुमरतां, उधरे पतित अनेक।
कह कबीर नहि छाड़िये, राम नाम की टेक॥

उस भगवान्‌के नामके जपकी शरण नहीं छोड़नी चाये। नामको जप करनेसेती निष्काम प्रेम भगवान् मांय आपे ही होय जावे। ऐसी सुनी है। तथा प्रत्यक्षका लाभ भी होवे है। भाईजी! रामको नाम जपो जावे तो फूसकी झोपड़ी भी अच्छी है। नहीं तो सोनेका महल भी कोई कामका नहीं है।

राम जपत दरिद्रीभला, टूटी घर की छान।
कंचन मंदर जारिये, जहाँ भक्ति न सारंगपान॥

जब भगवान्‌की भक्ति नहीं तो फेर कोई काम को नहीं। एक दिन सबको नाश होनो है। जो कछु आय मिले उसी मांय संतोष रहनो चाये।

भगवान्‌का तथा गीताजीका बचनां को हुक्म तो जरुर कछु पालनो चाये। भगवान्‌का बचन पालनेवालो भगवान्‌को भोत ही प्यारो है। भगवान् गी० अ० १८ श्लोक, ६९ मांय कहवे है जो मेरा गीतारूपी बचनको संसारमें फैलावै उससे बढकर कोई प्रेमी नहीं है। और, धारण करै जिसकी तो फिर बात ही कुण है। भजन-ध्यान करता-करता जदि फुरणा होवे तो कछु हरज नहीं है। तुम

भोत चेष्टा सहित नामको जप और भगवान्‌को चिंतवन बनो रवै सोई उपाय मांय रखोगा तो सभी फुरणा नाश होनी कछु बड़ी बात नहीं।

(७४)

श्रीघनश्यामदासजी

माघ बदी ३

भजन, ध्यान राखता हुआ काम करनेकी विशेष चेष्टा करनी चाये। यदि भजन-ध्यान रहता होयां काम नहीं होवतो होवे तो श्रीभगवान् श्रीअर्जुनको गीता अ० ८ श्लोक ७में किसलिये हुकम देता तथा सांख्यके अनुसार भो श्रीभगवान् किसलिये कहत गीता अ० १४ श्लोक १९ में। इससे मालूम होवे है भजन-ध्यान रहता हुआं काम अच्छी तरह होने सक है। श्रीगीता अ० १८ श्लोक ५६-५७-५८ के अनुसार काम करता हुआ भी भगवान्‌के मांय चित्त लगानेसेती परमगति होने सके है। भगवान्‌के मांय चित्त लगाने सेती काम नहीं होवतो तो भगवान् कहता भी नहीं।

एकान्तमें ध्यानको साधन जमानो चाये। काम करतो हुयां भी सावधान रहनो चाये। जबतक स्थिति नहीं होय तबतक विशेष सावधानी से काम करनो चाये। पीछे तो आपे ही काम होने सकै है। निराकारको ध्यान रहता होयां काम होवे तो निराकारको ध्यान करनो चाये। साकारको ध्यान करतां होयां ध्यान होवे तो साकारको करनो चाये। भजन-ध्यान हर समय रहनो चाये। असली बात या है।

(७५)

श्रीडूंगरमलजी

आसाढ़ बदी ५, स० १९८०

समयने अमोलक समजकर अमोल्क काम मांय लानो चाये। उत्कंठा होनेसेती भजन-ध्यान, सेवा-सत्संगको प्रचार होने सकै है। इसलिये प्रार्थना भगवान्सेती करनी चाये, बाकी प्रार्थना भी नहीं करनी, और भी अच्छी बात है। प्रार्थना भी खुशामद की बात है। फकत चेष्टा करनी चाये। अगलेने गर्ज होवे तो प्रचार करे। नहीं तो अगलेकी मर्जी। दोनो तरफकी गर्ज बिना काम चले नहीं। यदि भगवान्ने गर्ज नहीं होवे तो आपाने ही क्या गर्ज है? आगलेने संसारमांय भजन, ध्यान, सत्संगको प्रचार करनो होवगो तो आपे ही कुछ प्रचार होने सकै है। आगै ही जो कुछ होया है, जिका उनाकी मर्जी सेती हुयो है। और, आपके काकाजी, माजीकी सेवा होनी चाये। उनाको हुकम पालनो चाये। संसारके लोगांकी सेवा करनी चाये। निष्काम और भावसेती दूकानको काम भी सच्चाई के साथ करनो चाये। व्यवहार शुद्ध होनेसेती दुकानदारीसेती भी भगवान्का दर्शन होने सकै। दूकानके व्यवहारसेती यदि भगवान्के मिलनेको रास्तो लोगोंके समज माय आवे तो भोत आदमियां को कल्याण होने सकै।

१ संसारके जिनस लेने-बेचनेसेती भगवान्की प्राप्ति हो जावे।

(७६)

श्रीकृष्णदासजी, दिल्ली

सावन बदी ६

जयदेवका प्रेम सहित राम राम।

आप लोगोंने दिल्लीमांय विशेप सत्संग, भजन, ध्यान और श्रीगीताजीके अभ्यासकी विशेप चेष्टा करनी चाये। और, श्रीगीताजीके प्रचार करनेवालेके समान कोई भी प्रेमी भक्त भगवान्‌को है नहीं। श्रीगीता अ० १८, श्लोक ६८ मांय श्रीभगवान् लिख्यो है। सोही उनको अर्थ देखनो चाये। तथा श्रीगीताजीको प्रचार संसार मांय करनेकी सामर्थ्य होवे तो सामर्थ्य बनाबनेकी चेष्टा करनी चाये। इस संसारमाय निष्काम-भाव सेती जो श्रीगीताजीको प्रचार करै है, उतनो श्रीभगवान्‌को ज्यादा प्रेमी है। इस माफिक समझनो चाये। श्रीगीताजीमांय भोत-सा लक्षण श्रीभगवतप्राप्तिवाले पुरुषोंका लिख्या। जिका प्रायः पूरा ही जिस मांय होवे सो ही जाने। बाकी श्रीगीताजीके प्रचारवाला नहीं, ये गुण तो दूसरा भी जाननेसक्के है। इसा गुणांसेती भगवान्‌के भक्तको पीछाणकर उनका संग करकर श्रीगीताजीको मर्म जाननो चाये। यदि प्रचार नहीं भी होवे तो भी अपने कल्याणके लिये उसको अर्थ सहित अभ्यास तो जरुर ही करनो चाये। श्रीगीताजीको जो अभ्यास करै है जीकोई तो उत्तम है। श्रीभगवान् कवै है मै उसके द्वारा ज्ञानयज्ञ करकर पूजित होऊँ हूँ। श्रीगीता अ० १८, श्लोक ७०माय भगवान् लिखो है। सोई उसको मतलब श्रीगीत मांय देखनो चाये। श्रीगीताजीको सुननो भी भोत उत्तम है। उसके सुननेमात्रसे भी उत्तम लोकांकी प्राप्ति होवे। यदि धारण कर लेवे तो परमपदकी प्राप्ति होजावे।

(७७)

श्रीहनुमानप्रसादजी मोकलवाड़ी

सावनबदी ९, स० १९८०

श्रीगीताजीके अभ्यासकी विशेष चेष्टा करनी चाये । श्रीतुलसीकृत रामायणको अभ्यास भी ठीक है । बाकी श्रीगीताजीके समान तो गीताजी ही है और नामके जपके सहित ध्यान करनेकी विशेषकोशिश करनी चाये । आगे ध्यानके प्रताप्सेती मुनीलोग परम गतिको प्राप्त होया है । ऊपर मुजब साधन करनेसे भगवान्मांय प्रेम होयकर दर्शन होने सके है ।

(७८)

श्रीतनसुखरायजी, फूलचन्दजी, शिवसागर (आसाम)

श्रीगीताजीके अभ्यासकी विशेष चेष्टा करनी चाये । श्रीगीताजीको अभ्यास करनेसूं भी भगवान्की कृपासेती श्रीगीताजीके अनुसार आचरण होने सके है फेरु भगवान्के मिलनेमांय ढील नहीं । यदि आप श्लोक नहीं बांचने सको तो अर्थ ही बांचने सेती और अभ्यास करनेसेती यदि धारण हो जावे तो श्रीभगवान्का दर्शन होने सके है । इसलिये श्रीगीताजीके अभ्यास करनेकी विशेष चेष्टा करनी चाये सत्संग की भी चेष्टा करनी चाये । इस माफिक करनेसेती निष्काम भावसेती भगवान्का भजन-ध्यान होने सके है ।

(७९)

सावन बदी ६, सं० १९८०

श्रीडूंगरमलजी तिनसुकिया (आसाम)

जयदेवका प्रेमसहित राम राम ।

आपके प्रेमके माफिक तो मैं पूरी चिट्ठी ही देने सकूं हूँ नहीं, तो आप तो चिठी दियां ही जावो छो । हमारी चिठी देनेकी ढील होवे जिके

दोषने भी तुमा दोष तथा हमारी गलती समझो नहीं, जिकी आपके प्रेम और विश्वास की बात है। और, श्रीभगवान्के विषयने लेकर प्रेम छे, जंको भगवान्के ही साथ प्रेम है। आपका पिताजी बीमार है, उनको छोड़कर, उनके हुकम बिना आनो आपको ठीक समजो जाव नहीं। और मै भी कई कारणसेती जान सकूं हूँ नहीं। कारण, मिलने मांय कछु प्रारब्ध भी कारण समज्यो जावै छै।

श्रीनारायणदेवके साथ यदि प्रेम करयो जावे तो उनके मिलने-मांय कछु भी प्रारब्ध आंट लगाने सके नहीं, ऐसा आगे भी लिख्यो थो। फेरूँ भी लिखनो है कि एकदम श्रीनारायणदेवके साथ पूर्ण प्रेम होवे जिकी चेष्टा करनी चाये। संसारमें श्रीभगवान्के प्रेमके समान कछु भी है नहीं। श्रीपरमात्मादेव ही प्रेमके मर्मने अच्छी तरह जाने है। उनके साथ प्रेम होवे तो उनांने आनो पड़ै; कोई भी रोकने-वालो है नहीं। श्रीनारायणदेव तो प्रेमके अधीन है। प्रेमको मर्म जो जानता है वो ही प्रेम मांय बिक जाता है। श्रीनारायणके जो प्रेमी भक्त है उनसे श्रीनारायणका वियोग सह्या जावे नही जणां उनाने आणो पड़ै। आप लोग श्रीभगवान्को वियोग सहणे सको छो, जना आपने भी वियोग हो रह्यो है। जिस दिन भगवान्के वियोग मांय श्रीगोपियाँ की माफिक विह्वल हो जावोगा तो फेरुं भगवान्ने तुरन्त आणो पडेगा। यदि प्रेमके द्वारा श्रीनारायणदेवने जीतनो चावो तो और भी ज्यादा प्रेमकी जरुरत है। जो भोत भारी तेज प्रेमी है, वह तो करुणारवमें विह्वल होकर भगवान्के आनेके लिये भी प्रार्थना नहीं करते उन लोगोंके मनमांय ऐसो भाव होवे यदि भगवान् इतना

भारी प्रेमी होयकर भी मेरा वियोग सहते हैं। फिर मै तो साधरण प्रेम के जाननेवालो हूँ। मुझको तो उनके दर्शनके लिये आतुर कभी नहीं होनो चाहिये। जो प्रेमके आधीन है और प्रेमके पूर्ण मर्मको जाननेवाले हैं वे ही प्रेमीके हाथ प्रेममें विक्री होनेके लिये तैयार रहते हैं। प्रेमीके पास गया विना एक पलक भी नहीं रह सकते। ऐसे प्रेमी है। और, इस समय श्रीभगवान्‌देव देख रहा है। यदि मुझको वुलानेके लिये प्रार्थना करे तो मेरी बात रह जावे, नहीं तो जाणों तो शेपमांय है ही। बाकी समजवान प्रेमी होवे वह कभी भगवान्‌को वुलानेके लिये प्रार्थना करता नहीं। वह जानता है कि भगवान् अन्तर्यामी हैं और प्रेमके मर्मको जाननेवाले है और प्रेमके आधीन है। फिर किसलिये खुशामद करनी चाहिये? और, दूसरी बात यह है कि इतना प्रेमी होयकर भी साधक वो वियोग सह रह्या है। फिर तुमारे लिये वियोग सहना कुछ बड़ी बात नहीं। कारण तूं तो इतनो प्रेमको मर्म भी जाने नहीं। इसलिये इस विषयमांय तुमाने शूर-वीरता राखनी चाये, तुम प्रेम करता रहोगा तो शेपमांय हारकर उनको दर्शन देना पड़ेगा। इस विपयमांय भगवान् इतना शूरवीर नहीं है। यदि तुमां खुशामद करोगा तो जासती खुशामद कराने सके है। इसलिये विशेप खुशामद करनेकी जरुरत नहीं। यदि करै भी तो उल्टी गर्ज करानी चाये। यदि तुम उल्टी गर्ज करावोगा तथा धक्का भी मारोगा तो भी आवेगा। यदि तुम्हारो निष्काम भावसे तेज प्रेम होवेगो तो?

(८०)

श्रीबैजनाथजी

सावनबदी ७, स० १९८०

बहुत दिन हुआ संसारके जाल मांय फंसकर श्रीनारायणदेवको भूल रह्या हो, बाकी अबतो चेतनो चाये। समय बीतो जावे है। गयोड़ा दिन पाछा आवे नहीं। एक दिन अचानक मृत्यु आकर पछाडेगी, तब तुम्हारो कौन सहायता करेगा? एक नारायणदेवके बिना ओर कोई भी तुम्हारो नही। सगलो संसार अपने मतलबको है। कोई भी तुम्हारो है नहीं। ऐसो समजकर सोचनेसे निष्कामी प्रेमी प्यारो भगवान् है, उनाने कभी भी भूलनो चाये नहीं। और संसारका जितना पदार्थ है सब नाशवान् और क्षणभंगुर है। इसलिये उनके साथ प्रेम छोड़कर एक श्रीपरमात्मादेवके साथ ही प्रेम करनो चाये। कारण, संसारका सब पदार्थ नाश होनेवाला हैं।

श्रीनारायणदेव अविनाशी है। उनके साथ करयो हुयो प्रेम भी अविनाशी है। तुमारे शरीरसे नाश होनेपर भी भगवान्के साथ करयो हुयो प्रेम कभी नाश नहीं होवेगो और मरनेके बाद कोई भी जिनस साथ नही जावेगी। तुम्हारो शरीर भी तुम्हारे साथ नही जावेगो। श्रीभगवान्को भजन ही काम आणे सके है, यदि आप करोगा तो?

(८१)

श्रीलक्ष्मीनारायणजी

सावनबदी ७, स० १९८०

जल्दी ही चेतकर खूब कोशिश करनी चाये। नहीं तो बहुत मुश्किल है। आजकल धर्मपर आफत है। इससे थोड़े-से धर्मके पालन

सेती भोत ज्यादा लाभ मिले है। ज्यो संवत् १९१४ की गदर मची थी, उस समय कोई हिन्दू किसी विलायती गोरेसाहबकी सहायता पहुँचाई उसको गवर्नमेंट भोत सत्कार कियो। उसी प्रकार इस समय कोई धर्मको पालन करे जिकैको श्रीनारायणदेव भोत सत्कार करने सके है। कारण, इस समय धर्म, भक्तिका प्रचार भी कमती है। इससे थोड़ो भी धर्मको पालन करनेसे अर्थात् थोड़ो भी धर्मके विषयको प्रचार करनेसेती भोत फायदो है।

(८२)

श्रीगोविन्दरामजी।

सावनवदी ७, स० १९८०

××× और घरमांय सगला जणांने भजन, ध्यान, सत्संग तथा श्रीगीताजीके अर्थसहित अभ्यास करानेके लिये लगानेकी विशेष चेष्टा करनी चाये। आगे मुनिलोग याने ऋषिलोग भजन-ध्यान हीके प्रतापसे परमगतिको प्राप्त होया है। इस माफिक समजकर निष्काम प्रेमभाव सहित भगवान्‌के नामको जप तथा ध्यान निरन्तर बणे जिकै तांई विशेष कोशिश करनी चाये। और काम मांय हर्ज होवे तो कुछ हर्ज नहीं है।

(८३)

श्रीमोतीलालजी, गोरखपुर

सावन वदी ७, सं० १९८०

तुम्हारो समय जासती किस काममें बीते है? इस समय आप नहीं चेतोगा तो फेरूं कब चेतोगा। मनुष्यका जीवन बहुत ही अमोलक है जिकेनै अमोलक काममांय लगानो चाये। एक पलक भी फालतू काममांय नहीं बितानी चाये। स्त्री-पुत्रके साथ प्रेम करनेसे

तथा संसारके मनुष्योंके साथ प्रेम करनेसे तथा फाल्तू बातां उनके साथ करनेमें समय बिताने मांय भोत ही हानि है। असल मांय तो आपनो समय भजन ध्यान सत्संग और श्रीगीताजीके प्रचारमांय ही बिताणो चाये।

इस दुनियां के बीच में, चार वस्तु है सार।
भजन ध्यान साधुसंगति, श्रीगीता को प्रचार ॥

इसलिये ऊपर लिखे हुए हो काममांय समय बितानो चाये। तथा निष्कामभावसेती श्रीनारायणदेवके लिये रूपया कमानेवाले काम-मांय भी समय बितायो जावे तो कुछ हर्ज नहीं, बाकी फाल्तू काम मांय समय नहीं बितानो चाये।

(८४)

श्रीमहावीरप्रसादजी पोद्दार

सावन बदी ७, सं० १९८०

भजन-ध्यान, सत्संगको साधन किस्योक चाले है? श्रीगीताजीके अभ्यास और प्रचारकी विशेष कोशिश करनी चाये। स्वराज्यकी प्राप्ति मांय श्रीगीताजीको प्रचार हमां प्रधान उपाय समझा छां। और, श्रीपरमात्माकी प्राप्ति मांय तो प्रधान उपाय है ही। इससे संसारके सुधारके लिये और आत्माके कल्याणके लिये श्रीगीताजीके प्रचारकी विशेष चेष्टा करनी चाये।

८५

श्रीघनस्यामदासजी जालान

सावन बदी ७, स० १९८०

×× और श्रीभगवान्‌को भजन, ध्यान और अच्छे पुरुषोंका संग श्रीभगवान्‌की दया सेती ही होवे है। श्रीभगवान्‌की दया समजने सेती

श्रीभगवान्‌की दयाको पूर्ण प्रभाव जाणो, जणां पूर्ण फल होवे। विना जाणें होवे नहीं। ज्यो घरमांय पारस होवे, परन्तु उसको प्रभाव जाने विना दरिद्रताको नाश होवे नहीं, उसी प्रकार भगवान्‌की दयाको प्रभाव जान्या विना पूर्ण फायदो होवे नहीं। जाननेसेतो ही फायदो है। या दया तो जीवांपर भगवान्‌की सदाई है। इसको नाम सामान्य दया है। और विशेष दया उसका नाम है जो विना ही करण अधिक दया भगवान्‌की तरफसेती होवे, सोई ही आजकल तो भगवान्‌की अधिक दया है याने विशेष दया है। बहुत-सा जीव भजन, ध्यान, सत्संग करनो चावे नहीं, तो भी भगवान् अपने भक्तो द्वारा उणांने जबरदस्ती अपनी तरफ लगानेकी चेष्टा करावे है। जिकी भगवान्‌की अधिक दया है। यदि जीवोंके कर्मकी तरफ देख्यो जावे तो हजारों जन्ममांय उद्धार होनो मुश्किल है। उन जीवोंको भी जल्दी उद्धार होवे ऐसी चेष्टा श्रीनारायणदेव आपने भक्तोंके हृदयमें प्रेरणा करके कराय रह्या है। जिकी भगवान्‌की विशेष दया है। संचित, क्रियमाण और प्रारब्ध तीन-प्रकारका कर्म है। उनमें संचितसे उत्तम फुरणा होवे, प्रारब्धसे संग प्राप्त होवे, फेरू पुरुषार्थ करायो जावे तो, उस पुरुषार्थको नाम क्रियमाण है। सोई तीन रकमका जिनका अच्छा नहीं है उन पुरुषोंको याने भजन, ध्यान, सत्संग लगाने की जो भगवान्‌के भक्तोंकी चेष्टा है सो ही भगवान्‌की चेष्टा है, सो ही भगवान्‌की प्रेरणासे है। सोई विना ही कारण जीवोंपर भगवान्‌की विशेष दया है। ऐसी दया हुयी पीछे भी जिस किसी जीवको उद्धार नहीं होवे तो उसके भाग्य और पुरुषार्थको धिक्कार देनो चाहिये। और, उसको महान् मूर्ख समझनो चाये।

उसकी दुर्गति अवश्य होनी है। इससे बढकर और श्रीनारायणदेव क्या दया करेगा ? श्रीनारायणदेव स्वयं अवतार लेकर आवे तो उस सेती भी उसकी विशेष दया समझी जावे। बाकी अवतार लेवे उस समय भी वहुत-सा अभागी जीव रह जाता है। उनको महान् मूर्ख समजना चाहिये । यदि नदी किनारे खेत होयकर भी जिस पर ऊपरसे ही समय-समय पर वृष्टि होवे। केवल खेतमें अन्न वोनेसे ही अनाज पैदा हो जावे और विशेप परिश्रमको काम नहीं। जिस पर भी आलस्य करो जावे और अन्न बिना मर जावे तो उसके समान और कौन मूर्ख है। जो भगवान्की सामान्य दया है जिकी तो मनुष्य शरीर रूप खेतके किनारे नदी है और विशेप दया है जिकी ठीक समय पर होनेवाली वृष्टि है और भगवान्के नामको निष्काम भावसे ध्यानसहित जप है जिको खेतमें बीज बोनो है। और, भगवान्कीप्राप्ति, उसको फल है और जन्म-मृत्यु ही काल है याने मौत है। और संसारके स्वराज्य की उन्नति किस प्रकारसे माफिक होने सके है ? जिके विपय मांय कई दफे आगे विचार होयो थो। बाकी पूरी बात समजमांय आई ही नहीं। इव ठीक समज मांय आय गई। जितना आदमी स्वराजमांय लाग रह्या है, वह सब गीताजीको कंठस्थ और अर्थसहित कर लेवे तो संसारको स्वराज मिलने सकै है। और भोत-सा आदमियोने श्रीभगवान्की प्राप्ति होने सके है।

८६

श्रीनन्दलालजी मुरारका

सावनवदी ८ सं० १९८०

और ध्यानकी स्थिति होनी तथा ठहरनेको उपाय पूछ्यो सोई सत्संग करने सेती ठहरने सके है। सत्संगकी शरण लेनी है जिकी

ही भगवान्‌की शरण है। जठे सत्संग होतो होवे उस जगह पहुँचनो चाये। भलाई चाहे सो ही होवो, होय सकै जठै तांई सत्संगमें जानो चाये। सत्संग मांय शरीरने रोज हाजर कर देनेसेती फिर सत्संग उसके लिये जो ही कुछ उद्धारको उपाय करनो होवे सो ही करने सकै है। आपको तो केवल इतनो ही कर्तव्य है कि रोज मिति श्रीभगवान्‌का गुणानुवाद और प्रभाव सहित प्रेमकी बात होवे उस जगह जानो और महान् पुरुषोंका वचन सुनकर अपनी सामर्थ के अनुसार उसके पालनेकी चेष्टा करनी चाये। फिर भजन, ध्यान आपे ही ठीक होकर भगवान्‌की प्राप्ति होनी सहज है। आप अपनो कर्तव्य पाल्यां पीछे आपके उद्धारको भार श्रीसत्संग ऊपर रवैगो। यदि ऊपर लिखे मुजब काम करोगा तो और जिस जगह तुमारी समजमांय भगवान्‌का गुणानुवाद और प्रभाव की उत्तम वातां होती होवे उस जगह जायकर भगवान्‌के गुणानुवाद और प्रेम सहित भगवान्‌के प्रभावकी बात सुननी है। उसका नाम सत्संग है। लाख काम छोड़कर भी सत्संगमांय जानो चाहिये। शरीरमांय पुरण रवै और कोई अडांस नहीं होवे तो लोटो-घंटो बेचकर भी सत्संग करनी उत्तम है। बाकी ऋण कर कर नहीं।

(८७)

श्रीहनुमानदासजी गोयन्दका, कलकत्ता

सावन बदी ७ सं० १९८०

सत्संगमांय टान है उन पुरुषांको संग करनेसु सत्संग मांय टाण होने सके है। और, संसारमांय सत्संगके समान और कछु भी

है नहीं। भगवान्के प्रेमी भक्तोंके साथ मिलनेकी उत्कठा होनेसेती यदि प्रारब्धके कारण उनको जानो नहीं बने तो उनको ही स्वरूप धारणकर कर भगवान्ने दर्शन देणा ही पड़े। इससे बढ़कर भक्तोंके साथ प्रेम करनो तो और भी उत्तम हैं; क्योंकि भगवान्के मिलनेकी उत्कंठा होनेसेती श्रीनारायणदेव अपने खास स्वरूपसेती स्वय दर्शन देण सके है । और, भगवान्को सगुण स्वरूप कौन है ? यदि पूछो तो उसको जबाब यो छै श्रीभगवान्का भक्त श्रीभगवान्को जेसो स्वरूप अपनी बुद्धिके अनुसार समजकर ध्यान करे, उस ध्यानके माफक जो स्वरूप है सो ही खास स्वरूप है। और, भगवान्के प्रेमी भक्तोंके कोई शरण जावे, यदि भगवान्के भक्त उसको स्वीकार न करे तो भंळाई मतना करो, कारण उनके, अख्तियार नही है, शरण जानेवालेके अख्तियार है । शरण जानेवालो अच्छी तरह अपने मनसूं शरण होया पीछे शरण होनेको लाभ जरूर उसको होवे, ज्यों एकलव्य भील द्रोणाचार्यकी शरण होयकर धनुर्विद्या सीखली । और, उससे भी बढ़कर है श्रीनारायणदेवकी शरण । कारण, श्रीनारायणदेवकी तो प्रतिज्ञा है—कोई कैसा ही पापी होवो, मेरी शरण होयां पीछे उसको मै त्याग नहीं सकता। श्रीनारायणदेवको प्रभाव कोई नहीं जाने तब भगवान् अपने भक्तोंके शरण लेने के लिये आर्डर दियो है, ज्यो अर्जुन के प्रति गीता अध्याय ४, श्लोक ३४ मांय।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥

और महापुरुषांको प्रभाव जाण्या पीछे उसी समय भगवान्की प्राप्ति हो जावे । उनके जाण्या पीछे उनके संगको त्याग बणे नहीं।

जबतक सगुण भगवान्का दर्शन होवता रवै तबतक मन और नेत्र दूसरे कानी भी जावने सके नहीं। आगलो भलाई अन्तर्धान हो जावो। बाकी प्रेमी भक्त तो छोड़ने सकै नहीं।

(८८)

श्रीवृजलालजी, मुकामा

सावन बदी ९ सं० १९८०

श्रीभगवान्के नामको जप ही कलियुग मांय परम कल्याण करनेवालो है। इससे श्रीभगवान्के नामको कभी भूलनो चाये नहीं। यदि ध्यानसहित श्रीभगवान्के नामको निष्कामभावसे निरन्तर जप करो जावे तो और कछु भी करनेकी जरूरत नहीं। नामके जपके प्रतापसेती सब कुछ आपे ही हो जावे। श्रीरामायणमांय तो जगह-जगह लिख्यो है। श्रीमनुस्मृतिमांय भी लिख्यो है अध्याय २ श्लोक ८७ उसको अर्थ देखनो चाये। श्रीभगवान्के नामके जपके प्रतापसेती सगला विघ्न भी नाश होणे सके है। क्योंकि बिगुल बजानेके साथ राज्यके सिपाही और दरोगा आजाते हैं। और बिगुल के सुननेसे चोर-डाकू भाग जाते हैं। उस माफक भगवान्के नामके जपके प्रताप सेती सगले विघ्न भाग जावे छै। यानि, नाश होय जावे। कोई भी विघ्न पास आने सके नहीं। इसलिये उचित है जबतक श्रीभगवान्की प्राप्ति नहीं होवे या भगवान्के परमधाम तक पहुँचने मांय त्रुटि होवे तबतक हर समय भगवानके नाम रूपी बिगुल निरन्तर बजानी चाये। फेर कछु भी चिन्ता नहीं है। यदि बिगुल छोड़कर गाफिल हो जावेगा तो मुश्किल है। शायद चोर-डाकू मिल जावेगा

तो आत्मरूपी धनको हरन कर लेवेगा। इसलिये हर समय चेतो राखनोचाये । काम-क्रोधादि ही चोर डाकू है।

(८९)

श्रीजयदयालजी कसेरा।

भादवा सुदी ६ स० १९८०

×××और संसारकी तरफसेती तथा शरीरकी तरफसेती प्रेम हटायकर श्रीनारायणदेवकी तरफ करनो चाये। इस मोके भी नही करोगा तो पीछे कब करोगा? इसो मोको सदाई रहनेको है नहीं। आप लोग पहलीसे यदि बहुत तेज साधन करता तो क्या आज पहली श्रीभगवान्‌का दर्शन नही होता? मेरी समजमांय तो जरूर होनै सके है। श्रीभगवान्‌के दर्शनमाय ढील होय रही है सो अपने विचारनी चाये। यदि थोड़ा-सा भीपैसा कमती होवे तो क्या देशका टिकट मिल सके है? एक पैसो कमती होनेसे भी मिले नहीं। एक स्टेशन गैल को भलाई लेवो। इस माफक भगवान्‌की प्राप्तिमाय समझनी चाये। हमारी बात सुनो तो हमारो लिखणो है। भलाई चाहे सोई होवो श्रीभगवान्‌को ध्यान सहित निष्काम भावसे भगवान्‌के नामको निरन्तर जप होवतां होयां ही संसारको काम करनो चाये। संसारके काममें हर्ज होवे तो भलाई होवो, ध्यान सहित भजनमांय त्रुटि नहीं करनी चाये। प्राण-पर्यन्त चेष्टा करनी चाहिये। फेरु कछु चिन्ता नहीं।

(९०)

श्रीबद्रीदासजी गोयन्दका

भादवा सुदी ८ स० १९८०

तुमां लिख्यो हमारो प्रेम नहीं, जणा कलकत्ते आनेके लिये किस तरह लिखी जावे। सोई प्रेम एक नम्बर होवे जिके लिये कोशिश

करनी चाये। इस मांय तो कोशिश ही प्रधान है । मैं तो तेरी समजमाय घणी ही कोशिश करूँ छूं। फिर प्रेम हमारे साथ नोत तेज नहीं होवे जिके मांय तुम्हारी तरफ सेती कोशिश की ही त्रुटि समझी जावे हैं। यदि भगवान्‌के साथ प्रेम करोगा तो शायद देरी भी होने सके है। कारण, भगवान्‌ने तो किसी की खुशामद है नहीं, तो भी कोई प्रेम करनो चावे उससेती प्रेम करनेके लिये भगवान् भी तैयार है।

और, मेरे साथ पहले तो भाई हनुमानदासको एक नम्बर प्रेम थो, फिर तुम्हारो होयो । अब श्रीघनश्यामदासको है। तुमा चेष्टा करो तो क्या घनश्यामदाससेती भी जासती प्रेम तुम्हारो नहीं होणे सके है? मेरी समझमें तो होने सकै है। बाकी तुमाने गर्ज कौन बातकी है। यदि घनश्यामदासकी स्थिति सगळां सेती उच्च समझी जाती जणां तो तुम्हारी शायद विशेष चेष्टा होणे सकै थी। खैर, मेरे साथ तो कमती भीप्रेम रवै तो कछु हर्ज नहीं, बाकी श्रीनारायण-देवेके साथ कमती प्रेम होनो नहीं चाये। उनके साथ तो अनन्यप्रेम-की जरूरत है। कारण, जबतक अनन्य विशुद्ध प्रेम तथा भाव भगवान् मांय नहीं होवेगो तबतक भगवान्‌का दर्शन होना मुश्किल है। इसलिये निष्काम भावसेती निरन्तर भजन-ध्यान करकर भगवान् में अनन्य प्रेम जल्दी होवे जिकै लिये चेष्टा करनी चाये ।

मै तो बिना प्रेम तथा थोड़े ही प्रेमसेती कलकत्ता जाने सकूँ हूँ तथा तुमा बाँकुडे आयकर भी मिलने सको हो, विशेष परिश्रमको काम है नहीं, यदि मेरे सेती मिलनो होवे तो। बाकी मेरे सेती

मिलने मात्रसु संसार-जाल सेती छूटनो होवे नहीं। यदि कहो होने सके है तो यो कहनो बणे नही। यदि यो कहनो सच्चो होवे तब तो हजारो मनुष्यां को उद्धार तो आज पहली होय जातो। और, भगवान्‌के दर्शन मात्रसेती उद्धार होने सके है। शास्त्र और वेद प्रमाण है। तथा कुछ देरीसेती भी होवे तो कुछ हर्ज नहीं आखरमांय होने सकै जिकै मांय तो कछु संशय है नहीं।

(९१)

श्रीरामजी

भादवा सुदी ९, स० १९८८

भाईहनुमानदास गोयन्दका

भाईजी! तुमांभी प्रेम सहित राम राम लिखो हो हमां भी लिखां छा, बाकी लिखां जिके मुजब आपाने प्रेम को भी पालन करनो चाहिये। दिन-दिन प्रेम जासती होवे जिकै लिये कोशिश तो करनी चाये। खैर, यदि ज्यादा जासती नहीं होवे तो कछु तो बढ़ानो चाये।

और हमारे सेती भी श्रीभगवान्‌के मांय प्रेम बहुत ज्यादा करनेकी जरूरत है। इसके लिये तो प्राण-प्रयन्त चेष्टा करनी चाये। हमारे साथ यदि प्रेम नही भी होवे तो भी हर्जो नहीं है क्योंकि; संसारमांय बहुत-सा भगवान्‌का ज्ञानी भक्त है जिनका मे नाम भी जानूं हूँ नहीं, उनको क्या परमगति नहीं मिलेगी? जरूर ही मिलेगी। जो कोई क्यो न हो, ज्ञानी भक्तको जरूर परमगति मिल्यां ही सरैगी। परन्तु जिनको श्रीनारायण देवमाय पूर्ण प्रेम नहीं है उनके लिये महान् हानि है। इसलिये श्रीभगवान्‌माय पूर्ण प्रेम होने के लिये प्राण-प्रयन्त चेष्टा करनी तुमारो काम है। फेरु नही प्रेम होवे तो

कोई हर्ज नहीं। आगे जिस माफक तुमारो सत्संगमांय प्रेम थो, रुपयाने, कुछ भी जिनसने तुमां सत्संग के लिये समझता नहीं तथा सत्संगके लिये शरीरकी तकलीफ ने भी समझता नहीं। उससे भोत जासती सत्संगमांय प्रेम होनो चाये। और, सत्संग सेतो भी भोत ज्यादा भगवान् मांय प्रेम होनो चाये और सत्संगमाय प्रेम है जिको भी भगवानके लिये है। इसलिये उसको भी भगवानके ही साय समझनो चाहिये। और, भगवानके मिलनेके उपाय मांय देरी भी होवे तथा कलंक भी लागे तो प्राण भलाई जावे, बाकी भगवानके मिलनेकी ढील नहीं होनी चाहिये तथा एक पलक भी जो भगवान्‌से विछोह में बीते उसे एक युगके बराबर लागे तब प्राण-प्रयन्त चेष्टा उसके लिये समझी जावे। ज्यों ध्रुव, प्रह्लाद और गोपियांकी चेष्टा थी। उस मुजब भगवान्‌के लिये चेष्टा होवे जणां श्रीभगवान्-मांय प्राणप्रयन्त चेष्टा समजी जावे।

(९२)

श्रीरामजी

आसाढ सुदी १०, १९८०

श्रीघनश्यामदासजी बिडलाको सन्देश भेज्यो जिसकी नकल।

(१) थारी चालसे थारो कल्याण कितना वर्षमांय, थारे अनुमान से होने सकै है?

(२) यदि होने मांय शंका हो तो उसके लिये क्यों नहीं कटिबद्ध होयकर कोशिश करी जावे है।

(३) मनुष्य शरीरके भोगके योग्य प्राय: सर्व पदार्थ आपके अनुकूल है। इससे बढ़कर और क्या चावो हो?

(४) प्रायः सर्वप्रकारकी अनुकूलता होनेपर भी यदि आप चेष्टा नहीं करोगा तो कब करोगा ?

(५) ऐसो मोको फिर सदाई थोड़ो ही मिलेगो। क्योकि सदा एक-सी तजबीज रहनी मुश्किल है।

(६) इससे आपने अपनो आदर्श वर्ताव बहुत उच्चश्रेणीको बनानो चाये; क्योंकि बहुत लोग आपको अनुकरण करने सके हैं।

(९३)

श्रीरामजी

कार्तिक सुदी ३

श्रीहनुमानदासजी गोयन्दका

और, इब साधन और भी तेज होवे जिके लिये बहुत जोर की चेष्टा करनी चाये। इस मौके भी नहीं चेतोगा तो फेरु कब चेतोगा ? इस माफक चेतावनेवालो आपने दूसरो मिलनो मुश्किल है। क्योकि किसके अडांस है। करोड़ो जन्म सेती संसारचक्रमांय फिरतां तुमा आय रया छो, अब भी नहीं चेतोगा तो फिर कब चेतोगा।

(९४)

श्रीरामजो

कार्तिक सु० १, स० १९८०

श्रीआत्मारामजी,

समय दिन-दिन भोत तेज काम माय लेनो चाये संसारमांय श्रीभगवानके प्रेमको प्रवाह भोत जोरसेती चलानो चाये।

ध्यानकी युक्तियाँ योग्य पुरुषोंको बतानी चाये तथा अयोग्य होवे जिकाने योग्य बनानेकी चेष्टा करनी चाये। और, योग्य बनजाय

जना श्रीभगवान्‌के गुप्त रहस्य की बात भी बतानी चाये। काम तेज करॉं बिना संसारमांय श्रीभगवान्‌के भावोंकी जागृति कैसे होवगी ? और, निष्काम-कर्म, उपासना और ध्यान तथासत्य भाषण को भाव लोगोंको अच्छी तरह समझानेकी कोशिश करनी चाये। श्रीभगवान्‌के ध्यानमांय मगन रहता हुआं ही संसारके भायोंकी परम सेवा करनेकी उत्कंठा राखनी चाये। फिर उसकी सामर्थ्य आप ही होय जावेगी। श्रीनारायणदेव इस माफिक के सेवकके हाथमांय आपनो परमधन देनेके लिये तैयार है। कुछ धनकी कमी है नहीं, निष्काम भावसेती सेवा करनेवाले सेवकोंकी कमी है।

हर समय समयकी तरफ निगह राखनेसेती समय भोत ऊँचे काममांय लागने सक है। समय भोत ही दामी है— ऐसो समजकर एक पलक भी बीते तो समजकर ही बितानो चाये। फिर कछु हरज नहीं है।

(९५)

श्रीरामजी

फाल्गुन कृ० १, सं० १९८०

श्रीआनन्दरामजी

आपने लिखा कि चिट्ठी आनेसे फायदा पहुँचता है सो कितनी देरतक पहुँचता है ? लिखना तुमने संसारमें आकर कितनी दूर तक काम बनाया। किस वास्ते संसारमें आये थे? यदि भगवान्‌के नाम, ध्यानमें पूर्ण प्रेम और विश्वास होता तो एक पलक भी भजन बिना जाता नहीं। इतना लिखनेपर भी तुमको चेत नहीं होवे तो फिर क्या उपाय किया जाय। जो कुछ करना हो शीघ्र करना चाहिये। और, भगवानको सब जगह व्याप्त जानना चाहिये। सब जगह विराट

रूपसे सगुणका ध्यान सब शरीरमें नारायणका रूप जानना चाहिये। जो कोई वक्त अवतार लेते है तो उस सच्चिदानन्दरूपको सगुण रूप एकमें प्रकट होता है। भक्तोंके और संसारके हितके लिये धर्मकी मर्यादाके लिये। असलमें सब कुछ भगवान्का रूप है।

दो०—जन्म मरणसे रहित है, नारायण करतार।
हरि भगतन के हेतु से, लेत मनुज अवतार॥

और, निर्गुण भावसे सत्-चित्-आनन्द रूपको ध्यान सब जगह करना चाहिये। सब हाल शिवभगवानजीने ध्यानके बारेमें बतायो जैसा करना चाहिये। और, शिवभगवान भक्तिके अवतार की बात बतायी इसके बारेमें कछु भी लिखा जाता नहीं; किंतु कुछ समय ठीक मालुम देता है, पीछे राम जाने। आगे और भी भक्ति विषयमें कुछ अच्छा समय नजर आवे तो अनुमान किया जाता है। पक्की बात लिखसकता नहीं। किंतु संसारके हिसाबसे समय कष्टका भी साथ में अनुमान किया जाता है और आगेकी बात किस तरह मालूम होवे? समय बीता जा रहा है, आपां उस कामको जल्दी बना लेना चाहिये। तुम्हारा एक भगवान् ही सहायक है। राम-नामका जप निष्काम-प्रेम-भावसे होने हीका नाम पुरुषार्थ है। पुरुषार्थ-हीनका उपाय होना मुश्किल है इससे पुरुषार्थ-हीन होना चाहिये नहीं।

(९६)
श्रीरामजी
माघ शु० १ सं० १९७४

पूज्य श्रीरामकुमारजी

×××मन मोहनमें प्रेम हो ऐसा उपाय लिखना चाहिये——ऐसा किस प्रकार हो कि सर्वत्र मनमोहन ही मनमोहन दीखने लग जाय जैसे-

डरपोक मनुष्य को रात्रिमें भूत ही भूत दीखते हैं वैसे ही प्यारे मनमोहनके सिवाय और कुछ दीखे ही नहीं। देखे तो उसका रूप, सुने तो उसका गुणानुवाद, बोले तो उसका नाम या यश। न तो कानोंसे दूसरी बात सुन पड़े, न नेत्रोंसे दूसरी कोई चीज दीख पडे– न मुखसे दूसरी बात उच्चारण ही हो, इसीका नाम सच्चा प्रेम है।

(९७)

श्रीरामजी

चैत सुदी १ स० १९८०

श्रीहनुमानदासजी गोयन्दका

सुखके माथे सिल पड़ो, जो नाम हृदयसे जाय।
बलिहारी वा दुःख की, जो पल पल नाम जपाय॥

इसलिये नामका जप होता रहे तो ऐसा दुःख भी भले ही हो और नामको जप नहीं हो उस सुखपर भले ही पत्थर पडे, नाम ही सार है। यदि आपको विश्वास हो तो नामको सार समझना चाहिये। सार समझे पीछे एकपलक भी वृथा जाती नहीं, संसारका काम चाहे जितना हो नाममें प्रेम रहते हुए ही हो, उतना काम शरीरसे जरूर करना चाहिये, जैसे पानीका पनिहार।

सुमिरनकी सुधि यों करो, ज्यों गागर पनिहार।
हाले डोले सुरतमें, कहे कबीर विचार॥

इस माफिक नाममें मन चाहिये फिर भले ही काम करो जहांतक हो दूसरे किसीको नाम-जप मालूम भी पड़े नहीं। भाई जी! ऊपरके मनसे व्यवहारकी बातें सांसारिक काममें, और भीतरसे भगवान्‌में।

सुमिरन सुरत लगायकर, मुखसे कछु न बोल।
बाहर के पट देयकर, अन्तर को पट खोल॥

उस भगवान्‌में सुरत लगानी चाहिये। भीतर का पट खोल देना चाहिये। फिर कुछ चिन्ता नहीं है। चिन्ता तो किसी बातकी कभी करनी नहीं चाहिये। मालिक जिससे राजी हो उसीमें राजी रहना चाहिये।

और, एक राततक चक्रधरपुर आनेकी लिखी, नहीं आना हुआ तो भाग्यकी बात लिखी सो भाईजी! भाग्य भले ही खराब होओ—भाग्य का भरोसा तो कायर ही लिया करते हैं। भजन, भक्ति, सत्संग में भाग्य कुछ भी कर सकता नहीं। भक्तिमें विघ्न करनेकी किसीमें भी सामर्थ्य है नहीं। भगवान्‌की सभी माया है, मालिक के दास पर अत्याचार कौन कर सकता है? दासका कर्तव्य चेष्टा करनेका है। आने-जानेकी चेष्टा करनी चाहिये, फलकी इच्छा रखनी नहीं चाहिये। जो कुछ भी कर्म हो, फल भुगताना मालिक के हाथ है। फिर भाग्यका आसरा तो मूर्ख तथा पुरुषार्थहीन ही लिया करते हैं। जिनके थोड़ा-सा भी भगवान्‌का भरोसा तथा भजन का प्रेम होगा वह तो मालिक का ही आसरा लेवेगा। भाग्य उनके आगे कौन चीज है। और मिलनेकी टाण लिखी सो हमारे निगह है। इतनी टाण रखनी चाहिये नहीं। इतनी टाण तो भगवान्‌के दर्शन की ही चाहिये सो आगला सब जगह हाजीर है। इतनी टाण पर भी ढील होवे उसको भी आनन्द ही मानना चाहिये। यदि इस मर्मको तुम समझ सको तो।

और, तुमने पूछा कि पूर्ण प्रेमीसे बिछोह कितना दिन और देखना पड़ेगा—सो भाईजी! जबतक तुम पूर्ण प्रेमी पूर्ण आनन्द स्वरूपका बिछोह मान रहे हो तबतक। इसका नियम लिखा जाता नहीं और तुमने लिखा कि 'मैं मेरे जानमें होता है उतना पुरुषार्थ

करता हूँ भाईजी जितना भाग्यका आसरा है, उतनी ही पुरुषार्थ की त्रुटि है। भगवान्‌के भक्त तो भगवान्‌के चरणोंका आसरा रखते हैं। उसके नामके स्मरणके सिवाय और किसी भाग्यका तथा दैवका आसरा मानते नहीं। सांसारिक मिथ्या वर्तावमें भले ही सांसारिक चीजोंके लिये भाग्यकी बात कहो और किसी महात्माको बड़ाई दो तब भले ही भाग्य की बात कहो।

(९८)

श्रीरामजी

श्रीबद्रीदासजी गोयन्दका

× × × और सत्य बोलनेकी अब एकदम जोर से निगह रखनी चाहिये। सत्य भी भगवान्‌की प्राप्तिमें सहायता देनेवाला है।

प्रमाण—मुण्डकश्रुति सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण। ३। १। ५

अर्थ—यह आत्मा सत्यभाषण करनेसे ही प्राप्त होता है और सम्यक् ज्ञानसे तथा ब्रह्मचर्यसे प्राप्त होता है।

सत्यमेव जयति नानृतम्। सत्येन पन्था विततो देवयानः।
(३। १। ६)

अर्थ—संसारको सत्यवादी ही जीतता है। मिथ्यावादी कदापि नहीं जीत सकता है। सत्यसे देवयान मार्ग मिलता है। बाकी भजन बहुत जोरसे करनेसे स्वतः ही सब ठीक हो जाता है। मिथ्या बोलनेवाले झूठे आदमियोंका भगवान् थोड़े ही विश्वास करते हैं। जब सर्वलोकके मालिकके माफिक पद मिले तो झूठ बोलनेवालेको थोड़ा ही मिलता है भाईजी पद मिलना तो दूर रहा उसका परमपद से मूलसहित नाश हो जाया करता है। जो पुरुष झूठ बोला करता है।

जैसे प्रश्नोपनिषद्में—**समूलो वा एव परिशुष्यति योऽनृतमभिवदति ॥ ६ ॥** अर्थ—सहित मूलके उसका नाश हो जाता है जो मिथ्या भाषण करता है ।

(९९)

श्रीरामजी

श्रीघनश्यामदासजी—नूंवाला

× × × भगवान्‌का भजन शीघ्र करने आये हो उस कामको बना लेना चाहिये । व्यर्थ काममें दिन नही बिताना चाहिये ।

दोहा—**टाले टालो दिन गया, व्याज बढ़न्ता जाय ।**
ना हरि भजे न खत फट्यो, काल पहुँगो आय ॥

समय बीतता जाता है पीछे पछतानेसे गरज सरेगी नहीं । एक भगवान्‌के बिना कोई भी संसारसे पार उतारनेवाला है नही । जिस वक्त प्राण जावेंगे—स्त्री, पुत्र धनकी तो बात ही कौन है अपना शरीर भी छोड़कर जाना पडेगा । कोई भी बिना भगवान्‌के पास आवेगा नहीं, किसीकी भी सामर्थ्य नही, भगवान्‌के बिना उद्धार करे—ऐसे मालिककी दोस्ती दिन-दिन अधिक हो सो करना चाहिये । उसका प्रेम उसके गुणानुवाद सुननेसे, पढनेसे विश्वास होकर, भजन होकरके होता है ।

केशव केशव कूकिये, ना कूकिये असार ।
रात दिवसके कूकते, कबहुँ तो सुनै पुकार ॥

मिथ्या सांसारिक बातोंके लिये बकनेसे मौन ही रहना अच्छा है । एक भगवान्‌के नामका जप उसके गुणानुवाद सुननेसे भगवान्‌में विश्वास होनेसे भजन ज्यादा होता है ।

(१००)

श्रीहरिरामजी ।

कबिरा यह तन जात है, सके तो लेहु बहोरि ।
खाली हाथें सो गये, जिन्हके लाख करोरि ॥
राजा राव राना रंक, बड़ा जो सुमिरे राम ।
कहे कबीर बंदा बड़ा, सों सुमिरे निष्काम ॥

समय बीता जाता है। जल्दी चेतना चाहिये, शरीर भी साथ नहीं जावेगा। रुपये और कुटुम्बकी बात तो परे रही। और, भगवान्‌के निष्काम भजनके सिवाय और कोई बड़ी बात नहीं है। चाहे कितनी भीड़ पड़े तो भी भगवान्‌से सांसारिक वस्तुके लिये अर्जी करनी चाहिये नहीं; किंतु मालिक आप ही कर दे तो सभी कुछ भगवान्‌के ही अर्पण समझना चाहिये। जो कछु है एक भगवान् ही हमारा है। जो कुछ होता है सो भगवान्‌की नजरमें होता है—ऐसा जानकर ही उसीमें आनन्द मानना चाहिये। भगवान् जो कुछ करते हैं उसीको आनन्द सहित धारण करना चाहिये प्रेममें मग्न होकर—

सुमिरन सो मन लाइये, जैसे दीप पतंग ।
प्राण तजै छिन एक में, जरत न मोरे अंग ॥

जैसे पतंग दीपकमें प्रेम रखता है वैसा प्रेम भगवान्‌में चाहिये। भले शरीर नाश हो जाय तब भी दीपकके पास ही जाता है। उसी प्रकार चाहे सो हो, एक भगवान्‌के सिवाय कुछ भी चीज माँगे नहीं। जो कुछ होता है, मालिकके हुकमसे होता है। तब चिन्ता फीकर करना, नाराज होना तो मालिकमें विश्वासकी त्रुटि है। जो कुछ हो उसीमें आनन्द मानना चाहिये और नामके जपमें मन भी जप करनेसे तथा शरण होनेसे आप ही लगता है।

वनकी चिड़िया भी जालमें फँसती है तो बेमालूम ही फँसती है। आप लोग भोगरूपी दानेके लोभमें फँसे हो तो काम रूप पारधीके आये पहिले ही निकलनेका उपाय करना चाहिये। इसी सांसारिक जालके काटनेका उपाय परमेश्वरके नामका जप रूपी छूरा है सो जिह्वाके द्वारा हर समय रगड़ भगवान्के नामके जपकी जोरसें लगानी चाहिये।

(१०१)

श्रीरामजी

श्रीगंगाधरजी।

बिना राम नामके भजनके कुछ भी उसका प्रभाव जाना नहीं, इसलिये मिथ्या सांसारिक भोगोंमें आठों पहर बिताते हैं—अन्याय कमावेगा उसको पाप भोगना ही पड़ेगा। भोग सब कुटुम्बवाले करेंगे, किंतु जिस समय प्राण जावेंगे तब कोई भी सहायता कर सकेगा नहीं। जब शरीर भी साथ जावेगा नहीं, तब और की तो बात ही कौन है? फिर तुम्हारे कुटुम्ब कौन काम आवेगा? और, घरके प्यारे आदमी जहाँतक पावेगा सभी कुछ लूटकर भस्मीभूतकर श्मशानमें डाल देवेंगे।

कबिरा हरि हरि सुमिरले, प्राण जाहिंगे छूट।
घरके प्यारे आदमी, चलते लहेंगे लूट॥

इसलिये जिस काम आना हुआ, सो काम जल्दी बना लेना चाहिये। एक भगवान्के सिवाय मनमें कुछ भी चिन्ता रखनी चाहिये नहीं। भगवान्के सिवाय जो कुछ संकल्प किया जाता है सो ही कालकी फाँसी है। इसीसे भगवान्का दास एक भगवत्प्राप्तिकी ही चिन्ता करता है।

चिन्ता तो हरिनामकी, और न चितवै दास।
जो कुछ चितवै नाम बिनु, सोई काल की फाँस॥

(१०२)

श्रीरामजी

श्रीगौरीशंकरजी

मोर तोरकी जेवडी, गल बन्धा संसार।
दास कबीरा क्यों बँधे, जाके नाम आधार॥

'मैं-मेरा 'तू तेरा' भाव छोड़कर भले ही घरमें रहे, कोई हर्ज नहीं है। सेवा भगवान्‌के गुणानुवाद सुननेसे होती है। और, नामके जपसे निष्काम भी आप ही होता है। निष्काम होनेसे ही पूर्ण प्रेम होता है। इसीलिये भगवान्‌के नामका जप अर्थको मनमें सुमिरना ही उद्धार करनेवाला है। सुमिरनके समान कुछ भी नहीं है, जो भजता है वही जानता है।

जप तप संयम साधना, सब सुमिरनके माँहि।
कबिरा जाने रामजन, सुमिरन सम कछु नाँहि॥

इसलिये भगवान्‌के स्मरणकी शरण छोड़नी नहीं चाहिये।

राम नाम को सुमिरताँ उधरे पाप अनेक।
कह कबीर नहीं छाँड़िये, राम नाम की टेक॥

एक भगवान्‌में मन लगाना ही उद्धार करनेवाला है।

(१०३)

श्रीरामजी

श्रीघनश्यामदासजी

मुझे पूज्य लिखना चाहिये नहीं। आगे भी मनाई करी थी। पत्र पढ़नेसे ध्यान अच्छा हुआ, सो ही आनन्दकी बात है। भोगोंमें वैराग्य और भजनमें प्रेम होनेके बाद ध्यान अच्छी तरह लग सकता है

और, मिलनेकी बात निगह की। केवल मिलनेमें क्या पड़ा है। तुम्हारे पिताजी, चाचाजी आदि तुम्हारी सेवाकी सराहना करें तब मिलना सुफल गिना जाय—"माताका सरायेड़ा पूत नहीं अच्छा समझा जाता है।" तुमने पहले सेवाके लिखा था, पिताजीकी आज्ञा, बिना ब्राह्मणकी सेवाके लिये काशीजी गया नहीं। सो सुनते है कि पहिले आपका काकाजी बिमार थे, उनकी भी सेवा तुम्हारे पूरी बनी नहीं। तब दूसरेकी सेवा क्या बनेगी ? जन्मके देनेवालोंकी सेवा पूरी ही करनी चाहिये। उनकी आत्मा दुःख पावेगी तो फिर उद्धार कैसे होवेगा ? चाहे सो कष्ट हो, उनकी चाकरी तो करनी ही चाहिये। किसलिये उनका हुक्म टालना चाहिये ? भाई हरि कृष्णने चूरूमें तुमको क्या कहा था, पूज्य पिताजीने तुमको क्या कहा था ? सभी याद रखकर बहुत चेष्टासे पालन करना चाहिये। कलकत्तावालोंका प्रारब्ध धन्य लिखा, सो धन्य तो उसीका भाग्य समझो जिसने कुछ लाभ उठाया है। तुम लाभ समझते तो सभी बात धारणा करते। किस वास्ते एक बात भी तुम छोड़ते हो—किसलिये तुम धारणा नहीं कर सकते हो ? तुम्हारा पूर्ण प्रेम हमारेमें होता तो हमारी बात भी किसी कामके लिये नहीं छोड़ते। शरीरको मिथ्या समझ जिससे प्रेम बढ़े वही करते।

दो०—है न्यारो सब पन्थ है, प्रेम पन्थ अभिराम।
नारायण यामें चलत, वेग मिले पिय धाम॥
मनमें लागी चटपटी कब निरखूँ घनश्याम।
नारायण भूल्यो सभी, खान पान विश्राम॥

सुनत न काहू की कही, कहै न अपनी बात।
नारायण वा रूपमें, मगन रहे दिन रात॥
देह गेह की सुधि नहीं, छूट गई जग प्रीत।
नारायण गावत फिरै, प्रेम भरे रस गीत॥

ऐसा प्रेम भगवान्‌से होनेके बाद बेड़ापार होनेमें देर है नहीं। मेरेसे भी प्रेम है वह भगवान्‌के लिये ही है तो कुछ हर्जा नहीं; किन्तु एक दम भगवान् ही से प्रेम चाहिये। तुमने लिखा कि तुम्हारे पत्रका आधार है—सो लिखना भूल है। आधार तो अन्न-जलका है तथा संसारिक भोगोंका तथा रुपयोंका है। यदि हमारे पत्रका ही होता तो उसीके ही अनुसार चलते। हमारे पत्रकी शरण उसी दिन समझी जायगी—हमारी लिखी हुई बातोंको, प्राण भी जावेंगे तो भी नहीं छोड़ोगे। और, सत्संग सभी जगह है। तुम्हारे विश्वास होतो पत्थर भी उपदेश देनेके लिये खड़ा हो जावे। भगवान् तो सभी जगह हैं।

सन्त जगतमें सो सुखी, मैं मेरी का त्याग।
नारायण गोविन्द पद, दृढ़ राखत अनुराग॥
तू तू करता तू हुआ, रही न मुझमें हूँ।
वारी तेरे नामकी, जित देखा तित तूँ॥

इसलिये भगवान्‌के नामका जप और ध्यान ही सार है।

(१०४)

श्रीरामजी

मार्गशीर्ष कृ० ६, सं. १९७४

श्रीशिवभगवानजी

शरीर और भोग सभी मिथ्या जान हरिके स्मरणमें हरदम मगन रहना चाहिये। चाहे लाख रुपये नुकसान हो, चाहे मनुष्य

नाश हो। हरिकी लगन ऐसी चाहिये कि सर्वस्व नाश हो तो भले ही हरि भगवान्से बिछोह न हो। एक भगवान् ही मिले।

लगन लगन सब कोई कहैं, लगन कहावै सोइ।
नारायण जा लगनमें, तनमन दीजै खोय॥
नारायण हरि लगनमें, यह पाँचो न सुहात।
विषयभोग निद्रा हंसी, जगत् प्रीति बहुबात॥

जैसे मिले भगवान् जल्दी मिले—हरवक्त भगवान्के नामका जप और ध्यानमें पागलकी तरह हो जावे तब मिलनेमें ढील है नहीं। प्रेमके अधीन भगवान् है—ऐसे प्रेमीका प्रेम छोड़कर संसारसे दोस्ती करे सो महामूर्ख है।

सवैया—पुत्र कलत्र सुमित्र चरित्र धरा धन धाम है बन्धन जीको।
बारहिं बार विषय फल खात, अघात न जात सुधारस फीको॥
आन कौ ओसन तजि अभिमान, कहि सुनि कान भजो सीय पी को
पाय परमपद हाथ सों जात, गई सो गई अब राख रही को॥

संसार सभी मोहकी फासी है। एक सत्-चित्-आनन्द ही है। उसके भिन्न जो कुछ है, सो मिथ्या है—ऐसा जानना चाहिये। मिथ्या भोगोको भोगते बहुत दिन हो गये, शरीरका अभिमान छोड़कर एक हरिके नामका जप हर समय करना चाहिये। एक पलक भी किस वास्ते छोड़ते हो ? जिस वास्ते छोडते हो सो सभी मिथ्या है। किन्तु गया हुआ समय तो हाथ आता नहीं और शेष है उसको छोड़ना चाहिये नहीं, जबतक शरीरका भस्म न हो तबतक ही इससे जो काम ले सकते हो ले लो। शरीरके सुखमें डूबेगा उसको सदाके लिये पछताना पडेगा। जबतक इस शरीरपर तुम अपना अधिकार मानते हो—जो करना है सो करलो। एक दिन तो शमसान-भूमिमें इसकी दुर्दशा

होवेगी । समय नजदीक आता जाता है । रुपये और संसारका आराम भाई बन्धु कौन काम आवेंगे । जिनके लिये तुम अपना अनन्त आनन्द छोड़ते हो । अन्तमें कोई भी सहायता नहीं कर सकेगा ऐसा जान परमपिता परमेश्वरके आनन्द स्वरूपको एक पलक भी भूलना है सो पूर्ण मूर्खता है ।

(१०५)

श्रीरामजी

सावन वदी ६ सं० १९८७

श्रीकृष्णदासजी दिल्ली

आप लोगोंको दिल्लीमें सत्संग, भजन, ध्यान और गीता अभ्यासकी विशेष चेष्टा करनी चाहिये और श्रीगीताजीके प्रचार करनेवालेके समान कोई भी प्रेमीभक्त भगवान्‌का है नहीं । श्रीगीता-अध्याय १८ श्लोक, ६८में श्रीभगवान्‌ने लिखा है—उसका अर्थ देखना चाहिये तथा गीताजीका प्रचार संसारमें करनेकी सामर्थ्य नहीं होवे तो सामर्थ्य बनाने की चेष्टा करनी चाहिये । इस संसारमें निष्काम भावसे श्रीगीताजीका प्रचार करता है उतना ही श्रीभगवान्‌का ज्यादा प्रेमी है । इस प्रकार समझना चाहिये ।

श्रीगीताजीके अभ्यासकी विशेष चेष्टा करनी चाहिये । श्रीतुलसीकृत रामायणका अभ्यास भी ठीक है । बाकी श्रीगीताजीके समान तो गीताजी ही हैं और नाम-जपके सहित ध्यान करनेकी विशेष कोशिश करनी चाहिये ।

रात्रिमें श्रीभगवान्‌का भजन-ध्यान करते हुए ही सोना चाहिये । फिर प्राण भी यदि निद्रामें चले जावें तो कुछ हर्जा नहीं और जब चेत होवे उस समय भगवान्‌को याद करना चाहिये ।

श्रीगीताजीका अभ्यास करनेसे श्रीभगवान्‌की कृपासे ही श्रीगीताजीके अनुसार आचरण हो सकता है। यदि आप श्लोक नहीं बाँच सको तो अर्थ ही पढनेसे और अभ्यास करनेसे यदि धारण हो जाय तो भगवान् श्रीरामजीका दर्शन हो सकता है।

(१०६)

श्रीहनुमानदासजी

साधन और भी तेज हो उसके लिये बहुत जोरकी चेष्टा करनी चाहिये। ऐसे मौके भी नहीं चेतोगे तो फिर कब चेतोगे ? इस माफिक चेतानेवाला आपको दूसरा मिलना मुश्किल है, क्योंकि किसके क्या आपत्ति है——करोड़ो जन्मोसे संसार-चक्रमें फिरते हुए तुम आ रहे हो। अब भी नहीं चेतोगा तो फिर कब चेतोगा ? श्रीनारायणदेवमें तुम्हारा पूर्ण प्रेम नहीं होकर स्त्री-पुत्रोंमें और शरीरमें इतना प्रेम किसलिये हो रहा है। पहले भी संसारमें प्रेम रहा तब जन्म लेना पड़ा। अब तुम्हारे पास क्या तामापात्र होगया तथा क्या बुद्धिमें फर्क पड गया तथा क्या भ्रम हो गया क्या बात है ? लिखना चाहिये। यदि कहो कि तुम्हारा भरोसा है——सो भाईजी ! हमारा भरोसा भजन-ध्यान कमके लिये हुआ हो तो बहुत कच्चा भरोसा है। विचारनेकी बात है। फिर हमारा भरोसा तो भगवान्‌में प्रेम कम करनेवाला हुआ। इस प्रकार भरोसा किसीका भी नहीं होना चाहिये। और भगवान्‌में तुम्हारा प्रेम हो उसके लिये प्राणप्रयन्त चेष्टा करनी चाहिये। हमारेमें तुम्हारा प्रेम कम रहे तो भी कुछ हर्ज नहीं। श्रीरामजी, श्रीनारायणदेवमें प्रेम कमती नहीं होना चाये।

(१०७)

का० सु० २, सं० १९७७

श्रीज्वालाप्रसादजी कानोडिया।

श्रीनारायणदेवकी भक्तिभावका प्रचार बहुत जोरसे होना चाहिये। श्रीभगवान्‌के घरमें धनकी कमी नहीं है। संसारमें निष्काम भावसे सेवा करनेवाला कमती है। सेवा करनेकी इच्छा करनेसे सेवा करनेकी सामर्थ और सच्ची सेवाके लिये धन जो चाहिये वह आगलेके खजानेमें बहुत है। फिर चिन्ता कुछ भी नहीं है। ऐसा समझकर सेवाका काम बहुत जोरसे होना चाहिये।

(१०८)

श्रीपंडितजी जेष्ठारामजी

भजन-ध्यान होते हुए ही काम करनेका अभ्यास करना चाहिये। ध्यान होते हुए अच्छी प्रकार काम हो सकता है। बातचीत करते समय नामका जप छूट सकता है, किंतु ध्यान छूट सकता नहीं। यदि ध्यान होता हो तो अभ्यास करना चाहिये। अभ्यास ही इसमें प्रधान है। श्रीमनमोहनको कभी भूलना नही चाहिये। काम करते समय उसको क्षण-क्षणमें याद रखना चाहिये। क्योंकि जो कुछ काम किया जाता है वह उसका ही काम है। इसलिये उसको कभी भूलना नहीं चाहिये। जिसका काम करे उसको भूलना उचित नहीं। मालिकको भूलनेका कोई कारण भी नही है। मालिकका साथ ही मालिकको याद करानेवाला है।

(१०९)

पौष शु० २, सं० १९८९

श्रीबद्रीदासजी गोयन्दका

गोविन्दभवनके औषधालयमें लगानेके तेलमें सुगंधीके लिये कुछ विलायती वस्तु मिलायी जाती है। जिसमें कुछ गुण नहीं है। शौकके

लिये दी जाती है। उस जगह देशी वस्तु दी जा सकती है। उसमें गुण है, पवित्रता है। अपना तेल कमती बिके तो कोई हर्ज नहीं। कारण, इससे रुपया तो कमाना है नहीं, रुपया तो अपने पास भी बहुत है और श्रीभगवान्‌का खजाना तो अटूट है। यदि कोई विलायती वस्तु दी जाय तो छिपानी नहीं चाहिये।

शीशीपर लिख देना चाहिये। छिपाव नहीं होना चाहिये। पूज्य मालजीको तो ग्लानी कम है और दूसरे दवाखानोंमें सब जगह ग्लानी कम है। इसलिये तुमको सावधान किया जाता है। हम सुनते हैं कि विलायती वस्तु लगानेके तेलमें दी जाती है, छिपाई भी जाती है। सो निगाह करनी चाहिये। अपने तो कोई भी वस्तु हो कुछ भी छिपानेकी आवश्यकता नहीं। शीशीपर साफ उसका नाम लिख देना चाहिये। डंकेकी चोट लोगोंको कह देना चाहिये, समझा भी देना चाहिये।

(११०)

पूज्य श्रीहरिवक्सजी जोशी

सविनय प्रणाम। आपका पत्र मिला।

मैने गोविन्दभवनमें व्याख्यान दिया था, किन्तु अस्पताल और आपके ऊपर आक्रमण, वहिष्कार या विरोध करनेके लिये नहीं। अस्पतालमें आपके द्वारा सुराका प्रयोग होता है उससे बचनेके लिये कहा था कि हरिवक्सजी नाम छिपाकर सुराका प्रयोग करते हैं। मैने अस्पतालकी किताबमें यह देखा भी कि 'संजीवनी-सुरा'का सुरा नाम उठाकर केवल संजीवनीके नामसे बेची जाती है। आपने भी भाई नानूरामको इसी प्रकार संजीवनी-सुराको केवल संजीवनीके नामसे दिया था। संजीवनी-सुरा हेय है या उपादेय—इस विषयमें आपके

साथ मेरा एक मत होना भी कठिन है । क्योंकि आप उसको उपादेय समझकर प्रचार करते हो और मैं विरोध करता हूँ ।

आसवके विषयमें लिखा सो ठीक है । सुराके समान जिस आसवमें मादक द्रव्य हो उस आसवको भी मैं तो हेय समझता हूँ । किन्तु मेरी कौन सुनता है ! आपसे भी मैने प्रार्थना की थी कि संजीवनी-सुरा और चन्द्रहास-आसव दया करके अस्पतालमें न रखें। संजीवनी सुराको बंद करनेके लिये तो श्रीरामजीदासजी वाजोरिया और जयदयालजी कसेराको भी संकेत किया था; किन्तु अभीतक बंद हुई नहीं । आपसे सविनय प्रार्थना है कि यह सुरा और चन्द्रहास-आसव एवं सुराके ही तुल्य मादक नशेवाले आसवका प्रयोग आप न करें । मुझे अपना प्रेमी एवं सेवक समझकर यदि मेरी प्रार्थना सुन लेंगे तो मै आपका कृतज्ञ होऊँगा । अस्पतालका वहिष्कार करनेका तो कोई कारण ही नहीं है । क्योंकि उसके डाक्टरी विभागमें भी सुरा रहती ही है । यह बात सभी जानते हैं । मेरे कहनेका तात्पर्य यही था कि अस्पतालके आयुर्वेदिक विभागमें भी सुराका प्रयोग होता है सो नहीं होना चाहिये । आपका वहिष्कार मैं कैसे कर सकता था । वहिष्कार तो सुराका किया गया था । और उसीके लिये लोगोंको सावधान किया गया था । शास्त्र विषय-में जो आप तर्क किया करते हैं उससे तो मुझे बहुत प्रसन्नता होती है—यह आप जानते ही हैं । उसकी तो कोई बात ही नहीं है । उसके लिये यदि मुझे दुःख होतो मेरी मूर्खता ही समझना चाहिये । भविष्यमें भी न्याययुक्त तर्क करनेमें आपको संकोच नही करना

चाहिये। मैंने इर्ष्या-द्वेषके वश होकर आपका नाम नहीं लिया था। आपके साथ मेरा हार्दिक प्रेम है, इसीसे लिया था। इससे आपको यदि दुःख हुआ हो तो क्षमा करें और उत्तरोत्तर प्रेम बढावें। नानूरामके आरोग्य होनेसे तो मुझे बहुत प्रसन्नता है, क्योकि वह मेरा मित्र है।

(१११)

सं० १९८०

भाई मोहनलाल !

तुम किरासीन तेल और सूतके कामको गरीब दुःखी भाइयोंको नुकशान वाला काम समझकर उससे घबराकर चले गये सो तुम्हारी बहुत भूल हुई। अब तुरन्त मेरे पास गोरखपुर पत्र पहुँचे उसी दिन रवाना हो जाना चाहिये। तुम्हारा दूकानके कामसे मन घबरा गया तो मेरे पास भाई हरिकिशनको पूछकर आ जाना चाहिये था। तुम्हारेको कोई भी मनाही कर सकता नहीं और लोभ छोड़कर व्यापार करनेसे किरासीन तेल तथा सूतके कामसे गरीब भाइयोका बहुत उपकार हो सकता है; ये बाते समझकर ही हमने भाई हरिकिशनको बाँकुडे भेजा था—यह बात गुप्त रखनेकी थी। इसलिये प्रकाश नहीं की गयी। काममें लेनेकी चेष्टा थी और तुमको भी सारी बातें कहनेकी भाई हरिकिशनकी इच्छा थी, किंतु अवकाश मिला नहीं और अपना व्यापार इस समय भी है वह हजारो-लाखो मनुष्योंसे अच्छा है। किरासीनमें दो पैसा रुपया तथा सूतमें एक पैसा रुपया नफेका विचार है। झूठ, कपट, चोरीका काम है नहीं। पहिले तो बहुत पापका काम था। उसका बहुत सुधार किया गया। अब और भी सुधार करनेकी सारी बातें भाई हरिकिशनको हमने गोरखपुरमें समझा दी थीं; परन्तु भाई हरिकिशन तुमको कहने पाया नहीं।

तुमने हम लोगोंके उद्देश्यको समझा नहीं। यदि रुपया इकट्ठा करना ही तुमने हमारा उद्देश्य समझा तो बहुत भूलकी। खैर, अब तुम्हारी लोक-सेवाकी इच्छा सच्चे हृदयसे है तो और मेरे पर तुम्हारा विश्वास होता हो तो पत्र देखनेके साथ तुम तुरन्त गोरखपुर चले आना। सूत, किरासीनके कामद्वारा गरीब भाइयोका उपकार किस प्रकार हो सकता है—वह बातभी तुमको समझायी जा सकती है। इस कामपर तुम्हारा चित्त नहीं लगे तो तुम्हारी रुचिके अनुसार तुमको काम दिया जा सकता है। गोपालन, कपड़ा बनानेका, खेतोंका—जिससे लोक-सेवा हो या किसान लोगोंको जिस प्रकार सुभीता हो—तुम जो ठीक समझो वह काम हमसे परामर्श करो तो तुम्हारा तथा लोगोंका बहुत हित होसकता है। मेरी रायसे करनेसे बहुत सुविधा है, कार्यमें सफलता हो सकती है। नहीं तो घरवालोंको तथा तुम्हारे ससुराल वालोंको बहुत दुःख हो सकता है। तुम्हारा तथा लोगोंका हित भी होनेकी विशेष उम्मेद नहीं है, फिर भगवान् जाने। तुम्हारे ऊपर दबाव डालकर, पहिले भी काम कराया नहीं, अब भी करानेकी इच्छा नहीं। तुम हमसे भी बिना पूछे, बिना परामर्श किये ही चले गये? सो तुम्हारा बालकपन ही है। विचारकर काम हुआ नहीं। कुछ स्वभाव सुधारनेकी जरूरत है—(१) तुमको हठ बहुत है (२) सोचते नहीं, हठसे चाहे सो काम करते हो सो कोई भी काम विचार बैठाकर करना चाहिये (३) भविष्यको सोचते नहीं कि इसका क्या परिणाम होगा (४) अपमान भी सहन होता नहीं (५) जो कुछ बात होती है उसको साफ मालुम करते हो नहीं, तो इस प्रकार काम होता नहीं।

